Con. 3. XI.11.49
320

अंक 11
संख्या 11

शुक्रवार
25 नवम्बर
सन् 1949 ई.

# भारतीय संविधान सभा

## के

## वाद-विवाद

## की

## सरकारी रिपोर्ट

**( हिन्दी संस्करण )**

---

**विषय-सूची**

**पृष्ठ**

भारत शासन अधिनियम (संशोधन) विधेयक– . . . . . 4139-63
संविधान का मसौदा–(जारी) . . . . . 4163-4229

# भारतीय संविधान सभा

**शुक्रवार, 25 नवम्बर, सन् 1949**

---

*भारतीय संविधान-सभा, कान्स्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः दस बजे अध्यक्ष महोदय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।*

---

## भारत शासन अधिनियम (संशोधन) विधेयक

***अध्यक्षः** आज हमें सबसे पहले उस विधेयक को उठाना है जिसकी सूचना डॉ. अम्बेडकर ने दी है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बंबईः जनरल): श्रीमान मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि भारत-शासन-अधिनियम, 1935 को आगे संशोधित करने के उद्देश्य से एक विधेयक प्रस्तुत करने की अनुमति दी जाये।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है किः

"भारत-शासन अधिनियम को आगे संशोधित करने के उद्देश्य से एक विधेयक प्रस्तुत करने की अनुमति दी जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं विधेयक को प्रस्तुत करता हूं।

***अध्यक्षः** विधेयक प्रस्तुत कर दिया गया है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"भारत-शासन-अधिनियम, 1935 को आगे संशोधित करने वाले विधेयक पर यह सभा तुरंत विचार करे।"

***अध्यक्षः** यह प्रस्ताव किया गया है किः

"भारत-शासन-अधिनियम, 1935 को आगे संशोधित करने वाले विधेयक पर यह सभा तुरंत विचार करे।"

***श्री लोकनाथ मिश्र** (उड़ीसाः जनरल): श्रीमान मैं इस संशोधक विधेयक का स्वागत करता हूं। इस सम्बन्ध में मैं कुछ कहना भी चाहता हूं।

[श्री लोकनाथ मिश्र]

इस विधेयक के उद्देश्यों और कारणों के वक्तव्य में कहा गया है कि इस विधेयक को सभा के समक्ष इसलिये रखा जा रहा है कि कुछ प्रान्तों ने यह मांग की है कि उनके नामों में परिवर्तन किया जाये। मेरा निवेदन है कि कुछ ही प्रान्तों के नाम बदलने के स्थान पर गवर्नर जनरल को सभी प्रान्तों के नामों को बदलने के लिये तथा उन्हें "भारत वर्ष" संज्ञा के अनुरूप बनाने के लिये कदम उठाने चाहिये। उदाहरणार्थ, मेरे पास अपने प्रान्त से यह मांग आई है कि उड़ीसा का नाम उत्कल रख दिया जाये। कई कारणों से यह आवश्यक है। हमारे विश्वविद्यालय का नाम उत्कल विश्वविद्यालय है। श्रीमान, आपको विदित ही है कि कांग्रेस उस प्रान्त को उत्कल प्रान्त कहती है। इसके अतिरिक्त आदरणीय रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने भी–"जन, गण, मन" गान में हमारे प्रान्त को उत्कल कहा है। "उत्कल" एक श्रेष्ठ शब्द है। उसका अर्थ है उच्च कला तथा उच्च कल्पना। मैं आशा करता हूं कि मेरे यह शब्द गवर्नर जनरल महोदय तक पहुंचेंगे। मेरा निवेदन है कि उड़ीसा प्रान्त का नाम उत्कल रखने के लिये कदम उठाये जाने चाहियें।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्य-प्रान्त और बरार: जनरल): अध्यक्ष महोदय, दुर्भाग्य से समय के अभाव के कारण इस विधेयक को इस सत्र में प्रस्तुत किया जा रहा है। वास्तव में इस विषय का सम्बन्ध संविधान-सभा से है और इसे कुछ पहले प्रस्तुत करना चाहिये था। किन्तु श्रीमान, इसमें न आपका दोष है, न मसौदा-समिति का दोष है और न सभा का ही दोष है क्योंकि हमारे पास बहुत कम समय था। इसके लिये जो दूसरा उत्तम उपाय था उसी को मसौदा-समिति ने अपनाया। इसलिये मेरे विचार से उसका कोई दोष नहीं है।

किन्तु श्रीमान, मेरी यह धारणा है कि प्रान्तों के नामों में परिवर्तन करने का विषय इतना महत्वपूर्ण विषय है कि इस सम्बन्ध में इस प्रणाली का अनुसरण न करना चाहिये कि केवल प्रान्तीय सरकारें ही, अथवा कांग्रेस समितियां ही इस सम्बन्ध में निर्णय करें और वे अपने निर्णय को गवर्नर जनरल के समक्ष रखें और गवर्नर जनरल उस निर्णय का अनुमोदन कर दे। इस सम्बन्ध में हमारा कुछ दु:खद अनुभव रहा है। पिछले सत्र में सभा स्थगित करने के पूर्व हमने यह इच्छा प्रकट की थी कि चूंकि इस विषय का बहुत अधिक महत्व है इसलिये यदि प्रान्तीय कांग्रेस समितियां और प्रान्तीय सरकारें इस सम्बन्ध में कोई निर्णय कर लें तो यह सभा उसके पक्ष में अपना मत प्रकट करेगी। किन्तु हुआ क्या? संयुक्त प्रान्त की सरकार तथा विधान-सभा ने निर्णय किया कि उनके प्रान्त का नाम आर्यावर्त रखा जाय। इस पर इस सभा ने बहुत आपत्ति की और वह इस कारण कि आर्यावर्त सारे भारत का नाम है। संयुक्त प्रान्त के मेरे मित्रों को सारे भारत के नाम को अपनाने की बहुत चिंता रहती है। प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना के इस आशय के प्रस्ताव को सभा ने बहुमत से अस्वीकार कर दिया। इसका उल्लेख इस सभा की कार्यवाही के प्रतिवेदन में है। 1938 में जब राष्ट्रीय कांग्रेस ने कानपुर में

अपना अधिवेशन किया था तो संयुक्त प्रान्त के मेरे मित्रों ने अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के समक्ष यह प्रस्ताव रखा था कि संयुक्त प्रान्तीय कांग्रेस समिति का नाम हिन्दुस्तान कांग्रेस समिति रखा जाये। अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने उस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया था। मेरे मित्रों का इस सम्बन्ध में इतना उत्साह था कि उसके बाद उन्होंने उस प्रस्ताव को खुले अधिवेशन में रखा था। मुझे उसका विरोध करना पड़ा था और कांग्रेस ने उसे अस्वीकार कर दिया था। यह 1938 में हुआ था जब पंडित जवाहर लाल नेहरू राष्ट्रपति थे। मैंने ही कांग्रेस के खुले अधिवेशन में उसका घोर विरोध किया था और मुझे इसकी प्रसन्नता है कि कांग्रेस ने मेरे तर्क को स्वीकार किया था और यह कहा था कि संयुक्त प्रान्त सारे हिन्दुस्तान के नाम को नहीं अपना सकता है। इस कारण उसने उस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया था। चूंकि आर्यावर्त का नाम अस्वीकार कर दिया गया है इसलिये मुझे यह आशंका है कि कहीं वे हिन्दुस्तान के नाम का सुझाव न रखें। मुझ से पहले बोलने वाले वक्ता महोदय ने कहा है कि जिस प्रकार मध्य-प्रान्त को मध्य प्रदेश कहा जा रहा है उसी प्रकार उड़ीसा को भी उत्कल कहा जाये। संयुक्त प्रान्त को संयुक्त प्रदेश क्यों न कहा जाये? यदि इस नाम को पसंद न किया जाये तो अवध, अयोध्या, गंगा आदि के समान अन्य भी सुन्दर नाम हैं। वहां के लोग सारे भारत के नाम को अपना कर हमें यह क्यों बताना चाहते हैं कि भारत के धरोहरी केवल वही हैं? भारत के नाम पर अधिकार जमाने की उनकी प्रवृत्ति का मैं पूरे जोर के साथ विरोध करता हूं। इसलिये मेरी वह धारणा है कि इस सम्बन्ध में गवर्नर जनरल को शक्ति देना बहुत खतरनाक है। इस सम्बन्ध में मेरे नाम से एक संशोधन है, जिसे मैं यथोचित अवसर पर उपस्थित करूंगा। अपनी कुछ शर्तों के साथ मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूं। मैं यह चाहता हूं कि यह शक्ति गवर्नर जनरल को न दी जाये क्योंकि उसका अधिकार इस सभा को ही है। यदि इस सभा के पास इस सम्बन्ध में निर्णय करने के लिये समय न रहा तो अन्तिम निर्णय गवर्नर जनरल न करे बल्कि संसद ही करे।

***श्री मोहन लाल गौतम** (संयुक्त प्रान्त: जनरल): अध्यक्ष महोदय मैं उन लोगों में से नहीं हूं जो छोटे विवादों में पड़ते हैं। लोग अपने नाम स्वयं चुनते हैं। यदि अब उन्हें बदला जायेगा तो वे इस सभा में विवाद करेंगे। यदि हमारे प्रान्त, अर्थात् संयुक्त प्रान्त का नाम दो वर्ष पूर्व स्वातंत्र्य प्राप्ति के समय बदल दिया जाता तो यह सभा किसी प्रकार की आपत्ति न करती और हम सभी उसे स्वीकार कर लेते।

***माननीय सदस्य:** यह प्रश्नास्पद है।

***श्री मोहन लाल गौतम:** आप इसे प्रश्नास्पद कह सकते हैं। किन्तु चाहे आप कुछ प्रदेशों को उत्कल कहें या कराला या मलाबार या कन्नड़, इस सम्बन्ध में

[श्री मोहन लाल गौतम]

कोई आपत्ति नहीं करता। जब यह प्रश्न इस सभा के समक्ष रखा गया है तो लोग आपत्ति करने लगे हैं। मेरे मित्र श्री सिधवा ने कहा है कि संयुक्त प्रान्त को हमेशा सारे भारत के नाम पर अधिकार जमाने की पड़ी रहती है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि संयुक्त प्रान्त को एक देन है और वह यह है कि वही देश में ऐसा प्रान्त है जो यह दावा कर सकता है कि वह प्रान्तीयता का शिकार नहीं हुआ है।

***माननीय सदस्यः** यह प्रश्नास्पद है।

***श्री मोहन लाल गौतमः** आप इसे प्रश्नास्पद कह सकते हैं किन्तु मैं आपको चुनौती देकर कहता हूं कि सभी प्रान्तों में आप प्रान्तीयता के शिकार हैं।

***माननीय सदस्यः** जी नहीं।

***श्री मोहन लाल गौतमः** आपके हृदय में अन्य लोगों के लिये स्थान नहीं है। मैं अन्य सभी प्रान्तों के लोगों को चुनौती देकर कहता हूं कि आप मुझे उन लोगों के उदाहरण दें जो आपके प्रान्त के नहीं हैं और जिन्हें आपने संविधान सभा के लिये चुना है। मैं आपको चुनौती देकर पूछता हूं कि 1919 से अब तक आपने अपने मंत्री मंडलों में कितने ऐसे लोगों को रखा है जो आपके प्रान्त के नहीं हैं।

***अध्यक्षः** मैं माननीय सदस्य महोदय से प्रार्थना करता हूं कि वे उन विषयों की चर्चा न करें जिनका विचाराधीन प्रस्ताव से सम्बन्ध नहीं है। सभा के समक्ष इस समय एक सीधा-सादा प्रस्ताव है। वे अपनी बातों को उसी प्रस्ताव तक सीमित रखें।

***श्री मोहन लाल गौतमः** मुझे आपका निर्णय शिरोधार्य है किन्तु मैं आप को विश्वास दिलाता हूं कि संयुक्त प्रान्त किसी ऐसे नाम को नहीं अपनाना चाहता है जिस पर आप आपत्ति कर सकते हैं। ब्राह्मणों के इस कार्य का, अर्थात् नामकरण का कुछ आधार होना चाहिये। आप कहते हैं कि उसका नाम अवध क्यों नहीं रखा जाता। अवध संयुक्त प्रान्त के बहुत महत्वपूर्ण भागों में से एक भाग है किन्तु है वह एक भाग ही। अवध में नवाबों और ज़मींदारों की परम्परा रही है जिसे हम नहीं चाहते हैं।

***अध्यक्षः** हम नामों पर विचार न करें क्योंकि इस समय सभा नामों पर विचार नहीं कर रही है।

***श्री देशबन्धु गुप्त** (दिल्ली): संयुक्त प्रान्त भी आर्यावर्त का भाग ही है और वह पूरा अर्यावर्त नहीं है।

***श्री मोहन लाल गौतमः** मैं यह जानता हूं कि संयुक्त प्रान्त आर्यावर्त का भाग ही है।

***अध्यक्षः** मेरे विचार से आप विधेयक के उपबन्धों तक ही अपनी बातों को सीमित रखें।

***श्री मोहन लाल गौतमः** इस विधेयक को प्रस्तुत करने का कारण यह है कि बिना किसी प्रान्त के इतिहास को जाने हुए, बिना वहां के लोगों को जाने हुए न एक या दो सदस्यों के लिये ही यह सम्भव है कि वे खड़े उठकर उसके नाम प्रस्तावित करें और न इस सभा के लिये ही यह कोई सरल कार्य है कि वह इस सम्बन्ध में निर्णय करे। एक और कठिनाई भी उठ खड़ी होती है। यदि आप स्वयं इस प्रान्त का कोई नाम रख देते तो हम उसे स्वीकार कर लेते अथवा यों कहिये कि हमें उससे कोई आपत्ति न होती किन्तु आपने इस प्रश्न को प्रान्तीय सरकार के सामने रखा और प्रान्तीय सरकार ने प्रान्तीय कांग्रेस समिति से परामर्श किया और तदनन्तर एक नाम को प्रस्तावित किया किन्तु वह आपको मान्य नहीं है *(विघ्न)*। मैं श्री सिधवा के किसी प्रश्न का उत्तर देने के लिये तैयार नहीं हूं क्योंकि अध्यक्ष महोदय ने यह निर्णय किया है कि नामों पर विचार न किया जाये। इस लिये श्री सिधवा बिना नामों के आशय को समझे हुए ही इस समय यहां कुछ नामों का सुझाव रखने का कष्ट न करें। इस प्रकार कठिनाई यह है कि जो नाम प्रस्तावित किया गया था वह इस सभा को मान्य नहीं है और एकाएक कोई नवीन नाम का प्रस्ताव नहीं रखा जा सकता। मसौदा-समिति ने, तथा उसके सभापति डॉ. अम्बेडकर ने 1935 के भारत-शासन अधिनियम के सम्बन्ध में इस संशोधन को प्रस्तावित करके बीच का एक रास्ता निकाला है जिसके लिये मैं उनका आभारी हूं। उससे यह कठिनाई दूर हो जायेगी। इस समस्या का हल यह है कि नामों के सम्बन्ध में प्रान्तों की राय ली जाय और वे ऐसे होने चाहिये कि अखिल भारतीय प्राधिकारी को भी मान्य हों। अखिल-भारतीय प्राधिकारी राष्ट्रपति है और राष्ट्रपति से अभिप्रेत है राष्ट्रपति तथा मंत्रिमंडल। यदि मंत्रिमंडल शासनारूढ़ दल के प्रति उत्तरदाई होगा तो वह उस दल से अर्थात् आप लोगों से परामर्श करेगा। इसलिये वास्तव में यह शक्ति इस सभा से लेकर संसद के कांग्रेस दल को दे दी गई है। यदि आपको यह मान्य नहीं है तो आप इस प्रश्न के किसी अन्य हल का सुझाव रखें। इसे केवल अस्वीकार कर देने का अर्थ कुछ दूसरा ही होता है। मैं इस संशोधन के लिये मसौदा-समिति का आभारी हूं और हृदय से इसका समर्थन करता हूं। यह एक बीच का रास्ता है और मैं इस सभा के सदस्यों से प्रार्थना करता हूं कि वे इसे अपनायें।

***अध्यक्षः** श्री पातस्कर क्या आप बोलना चाहते हैं।

***श्री एच.वी. पातस्कर** (बंबईः जनरल): जी नहीं, मैं इस प्रस्ताव का विरोध नहीं करना चाहता किन्तु कुछ बातें अवश्य कहना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** जब हम विधेयक के खण्डों को उठायेंगे तो उस समय आप अपनी बात कह सकते हैं। अब मैं प्रस्ताव पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

"भारत-शासन-अधिनियम को आगे संशोधित करने वाले विधेयक पर यह सभा तुरंत विचार करे।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** अब हम विधेयक के खण्डों को उठायेंगे।

खण्ड 1, इसके सम्बन्ध में एक संशोधन मि. नजीरुद्दीन अहमद के नाम से है।

**मि. नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल: मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि "खण्ड 1 के उपखण्ड (1) में 'Fourth Amendment' (चतुर्थ संशोधन)' शब्दों के स्थान पर 'Third Amendment' (तृतीय संशोधन)' शब्द रखे जायें।"

***अध्यक्ष:** अथवा, विकल्पत:

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** जी नहीं श्रीमान, मैं वैकल्पिक संशोधन को उपस्थित नहीं करना चाहता।

श्रीमान, मेरे विचार से इस उपखण्ड में एक स्पष्ट दोष है और मैं उसकी ओर सभा का ध्यान दिलाना चाहता हूं। भारत-शासन-अधिनियम के संशोधन के सम्बन्ध में हम इस सभा में चार अधिनियमों को स्वीकार कर चुके हैं। यद्यपि हम चार अधिनियमों को स्वीकार कर चुके हैं किन्तु उनकी गणना अजीब ढंग से की गई है। अधिनियम संख्या 1 का उल्लेख है। उसके पश्चात् अधिनियम संख्या 2 आता है। उसके पश्चात् अधिनियम संख्या 3 आता है और फिर एकाएक अधिनियम संख्या 5 आ जाता है। दिखाई यह देता है कि अधिनियम संख्या 4 कोई अधिनियम है ही नहीं। श्रीमान, साधारणतया अधिनियमों की गणना क्रमानुसार की जाती है। अधिनियम संख्या 3 के पश्चात् अधिनियम संख्या 4 आना चाहिये और अधिनियम संख्या 5 नहीं आना चाहिये। अधिनियम संख्या 4 के अभाव के कारण एक स्थान रिक्त रह जाता है। मैं कह नहीं सकता कि यही स्थिति है या नहीं। कम से कम मैंने इसे इसी प्रकार समझा है। जहां तक संशोधनों का सम्बन्ध है, चार संशोधनों में से पहले को भारत-शासन-संशोधन अधिनियम, 1949, कहा गया है। दूसरे को भारत-शासन-संशोधन अधिनियम द्वितीय 1949, कहा गया है। तीसरे अधिनियम की गणना ही नहीं की गई है। इस लिए मेरा निवेदन है कि यह अधिनियम तृतीय संशोधन कहा जाये। जहां तक इस अधिनियम की संख्या

का सम्बन्ध है मैं कह नहीं सकता कि वर्तमान अधिनियम यदि स्वीकार कर लिया गया तो उसकी संख्या क्या होगी।

***अध्यक्षः** मेरे विचार से तृतीय संशोधन-अधिनियम विस्थापितों की सम्पत्ति के सम्बन्ध में है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** हो सकता है किन्तु वह प्रश्न दूसरा है।

***अध्यक्षः** और इसलिये यह चतुर्थ संशोधन-अधिनियम है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** किन्तु प्रश्न इससे बिल्कुल भिन्न है। मेरा अभिप्राय यह है कि अधिनियमों की गणना क्रमानुसार होनी चाहिये चाहे अधिनियमों का विषय कुछ भी क्यों न हो उनकी गणना क्रमानुसार होनी चाहिये। संविधान सभा के पारित किये हुये प्रत्येक अधिनियम में, एक, दो, तीन, चार आदि से क्रम से संख्या डाली जानी चाहिये। चतुर्थ अधिनियम को वास्तव में पंचम अधिनियम कहा गया है। इस समय इस पर विचार कर लेना चाहिये कि अधिनियम संख्या 5 को अधिनियम संख्या 4 समझा जाये अथवा वर्तमान अधिनियम को पिछली संख्या अर्थात् संख्या 4 दी जाये। यह पंचम अधिनियम के बाद स्वीकार किया जा रहा है किन्तु क्या इसे इसी प्रकार रहने दिया जाये और बीच में एक रिक्त स्थान भी रहने दिया जाय? क्या उस रिक्त स्थान को रहने दिया जाये अथवा क्या अभी उस दोष को दूर कर दिया जाये? मेरे विचार से इन बातों का बहुत महत्व है। दिखाई यह देता है कि कहीं कोई बात रह गई हैं मैं इस ओर सभा का ध्यान दिलाना चाहता हूं ताकि यह दोष दूर किया जा सके।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान, मेरे विचार से मेरे मित्र मि. नजीरुद्दीन अहमद के मस्तिष्क में कुछ भ्रम उत्पन्न हो गया है क्योंकि संविधान सभा ने जो विभिन्न अधिनियम स्वीकार किये हैं उन्हें देखने पर मुझे विदित हुआ है कि इस विधेयक में चतुर्थ संशोधन अधिनियम का जो नाम प्रस्तावित किया गया है वही नाम उपयुक्त नाम है। संविधान सभा ने जो प्रथम अधिनियम स्वीकार किया था वह भारत शासन (संशोधन) अधिनियम, 1949 है। दूसरा अधिनियम भारत शासन (द्वितीय संशोधन) अधिनियम, 1949 है जो बन्दियों के एक स्थल से दूसरे स्थल को हटाये जाने के सम्बन्ध में है। तृतीय अधिनियम, तृतीय संशोधन अधिनियम, 1949 है जो विस्थापितों की सम्पत्ति तथा बंगाल के निर्वाचन के सम्बन्ध में है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** उसे संशोधन अधिनियम नहीं कहा गया है। उसका दूसरा ही नाम हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** यदि आप खंड (1) की देखें तो आपको ज्ञात हो जायेगा कि उसमें ये शब्द प्रयुक्त हैं–"यह अधिनियम भारत-शासन (द्वितीय संशोधन) अधिनियम, 1949, कहा जायेगा।" इसके आगे का अधिनियम तृतीय संशोधन अधिनियम 1949, है, जो विस्थापितों की सम्पत्ति की अभिरक्षा तथा प्रबन्ध करने तथा उसे निबटाने और पश्चिमी बंगाल के निर्वाचन के सम्बन्ध में है।

[श्री बी.आर. अम्बेडकर]

मेरे विचार से भ्रम इस कारण उत्पन्न हुआ है कि हमने संविधान सभा में दो अन्य अधिनियम स्वीकार किये हैं जिनमें से एक प्रिवी कौंसिल के क्षेत्राधिकार के उत्सादन के सम्बन्ध में है और एक केन्द्रीय सरकार और विधान मण्डल के 1946 के अधिनियम के संशोधन के सम्बन्ध में है। ये अधिनियम भारत-शासन अधिनियम के संशोधन कदापि नहीं हैं इन अधिनियमों का भारत-शासन अधिनियम पर परोक्ष रूप से प्रभाव पड़ सकता है किन्तु ये भारत-शासन अधिनियम के संशोधन नहीं हैं। इसलिये हमें इसका अधिकार है कि हम इसे चतुर्थ संशोधन कहें क्योंकि जहां तक भारत-शासन अधिनियम 1935 के संशोधन का सम्बन्ध है, इस सभा ने केवल तीन अधिनियम स्वीकार किये हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** किन्तु तृतीय संशोधन-अधिनियम नाम का कोई अधिनियम नहीं है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** वह अधिनियम अस्तित्व में है। तृतीय अधिनियम विस्थापितों की सम्पत्ति की अभिरक्षा तथा प्रबन्ध करने तथा उसे निबटाने के सम्बन्ध में है। वह अधिनियम मेरे पास यहां पर है।

***अध्यक्ष:** यह दिखाई देता है कि इस विषय के सम्बन्ध में कुछ भ्रम उत्पन्न हो गया है चतुर्थ संख्या अधिनियम की संख्या नहीं है इस स्थल को अधिनियम का चतुर्थ संशोधन कहा गया है। वह अधिनियम की संख्या नहीं है। अधिनियम की संख्या अलग दी गई है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** वह वर्तमान अधिनियम का वर्णन है। वह उसका छोटा नाम है।

***अध्यक्ष:** वह केवल वर्णन ही है। उसकी संख्या इस प्रकार दी जायेगी— अधिनियम संख्या 6, 1949।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** जी हां, यही बात है। यह छोटा नाम है।

***अध्यक्ष:** संविधान सभा ने अभी तक अर्थात् 1949 में, पांच अधिनियमों को स्वीकार किया है। यह छठा अधिनियम होगा। किन्तु जहां तक संशोधनों का सम्बन्ध हैं, यह भारत-शासन-अधिनियम का चौथा संशोधन है। इसीलिये यह चतुर्थ संशोधन कहा गया है।

***पंडित हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्त प्रांत: जनरल): यदि जिन पांच अधिनियमों को हमने स्वीकार किया है उनमें से...

***अध्यक्ष:** यह छठा अधिनियम है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** हम इस सभा में पांच अधिनियमों को स्वीकार कर चुके हैं। उनमें से दो के भारत-शासन-अधिनियम, 1935, के संशोधन से कोई सम्बन्ध नहीं है।

***पंडित हृदयनाथ कुंजरू:** यदि वे संविधानिक अधिनियम नहीं थे तो वे इस सभा के समक्ष क्यों रखे गये?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** छोटा नाम अधिनियम के आशय से बिल्कुल भिन्न होता है।

***पंडित हृदयनाथ कुंजरू:** प्रश्न यह है कि क्या बिना भारत-शासन-अधिनियम, 1935, को संशोधित किये हुये किसी वादी को प्रिवीकौंसिल में अपील करने के अधिकार से वंचित किया जा सकता है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** अगले अधिनियम का छोटा नाम केन्द्रीय सरकार और विधान-मंडल संशोधन अधिनियम, 1949 था। उस अधिनियम का उद्देश्य भारतीय (केन्द्रीय सरकार और विधान-मंडल) अधिनियम, 1946 को संशोधित करना था। यह अधिनियम संसद का अधिनियम है और भारत-शासन-अधिनियम, 1935, नहीं है। दूसरा अधिनियम प्रिवी कौंसिल-क्षेत्राधिकार अधिनियम, 1949, को समाप्त करने के सम्बन्ध में था।

***पंडित हृदय नाथ कुंजरू:** किन्तु मेरे माननीय मित्र ने जिस पहले के अधिनियम की, अर्थात् विधान-मंडल अधिनियम के संशोधन की चर्चा की है वह भी भारत शासन-अधिनियम का संशोधन ही हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** जी नहीं, यह बात नहीं है। संसद ने एक पृथक अधिनियम स्वीकार किया था जो भारतीय (केन्द्रीय सरकार और विधान-मंडल) अधिनियम, 1946, के नाम से विदित है। यह संशोधन उस अधिनियम के संशोधन के सम्बन्ध में था। उस अधिनियम का भारत-शासन-अधिनियम, 1935 से कोई सम्बन्ध नहीं था।

***श्री आर.के. सिधवा:** संभवत: डॉ. अम्बेडकर को स्मरण होगा कि बिनौले से रुई विषयक अधिनियम का जो संशोधन हुआ था वह वास्तव में भारत-शासन-अधिनियम का ही संशोधन है किन्तु उन्होंने उसकी चर्चा नहीं की है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** इसमें कोई संदेह नहीं कि इससे अभिप्रेत है छठा अधिनियम किन्तु छोटा नाम अधिनियम की संख्या से बिल्कुल भिन्न होता है। हम इस समय छोटे नामों पर विचार कर रहे हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** (मुद्रास: जनरल): यह नामों का विषय है और वास्तव में संसद ने जिन पहले के अधिनियमों को संशोधित किया है उनके विभिन्न नाम रखे हैं, यद्यपि उनका उद्देश्य भारत-शासन-अधिनियम का संशोधन ही है जैसे कि भारत बर्मा आयात शक्ति अधिनियम, 1942। नामों को तर्क की कसौटी पर कसने की आवश्यकता नहीं है। मेरा यह सुझाव है कि सरकार विधेयक पर विचार करे।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** क्या कोई अधिनियम संख्या 4 भी है?

***अध्यक्ष:** दिखाई यह देता है कि वह है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** वह है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** वह मेरे पास नहीं है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** यदि आपके पास उसकी प्रति नहीं है तो हम क्या करें?

***अध्यक्ष:** आखिर नाम पर कुछ निर्भर नहीं करेगा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** यदि सदस्य महोदय यह चाहते हैं तो मैं उन्हें उसकी संख्या भी बता सकता हूं।

1949 का अधिनियम संख्या 1, "भारत-शासन (संशोधन) अधिनियम 1949" के छोटे नाम से विदित है।

1949 का अधिनियम संख्या 2, "भारत-शासन (द्वितीय संशोधन) अधिनियम 1949," के नाम से विदित है।

1949 का अधिनियम संख्या 3, "भारतीय (केन्द्रीय सरकार और विधान-मंडल) संशोधन अधिनियम, 1949," के नाम से विदित है।

1949 का अधिनियम संख्या 4, "भारत शासन (तृतीय संशोधन) अधिनियम, 1949" के नाम से विदित है।

1949 का अधिनियम संख्या 5 "प्रिवी कौंसिल क्षेत्राधिकार-अधिनियम का उत्सादन, 1949," के नाम से विदित है।

अधिनियम संख्या 3 और अधिनियम संख्या 5 का भारत-शासन-अधिनियम, 1935 से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसी कारण हमने इसे भारत-शासन-अधिनियम का चतुर्थ संशोधन कहा है।

***अध्याय:** प्रस्ताव यह है कि:

"खण्ड 1 के उपखण्ड (1) में 'Fourth Amendment (चतुर्थ संशोधन)' शब्दों के स्थान पर 'Third Amendment (तृतीय संशोधन)' शब्द रखे जायें।"

*संशोधन गिर गया।*

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"खंड 1 विधेयक का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

खण्ड 1 विधेयक का अंग बना लिया गया।

**खण्ड 2**

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"खंड 2 निकाल दिया जाये।"

श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव भी उपस्थित करता हूं कि:

"खंड 2 के अन्त में यह विधि उल्लेख किया जाये:

'52 & 53 Vict, C.63 (52 और 53 वीआईसीटी, सी 63 ।)'"

ये संशोधन रस्मी संशोधन हैं जहां तक अन्तिम संशोधन का सम्बन्ध है, मैं उसे इस कारण उपस्थित कर रहा हूं कि यद्यपि साधारणतया विधियों में सचिव को साधारण शक्तियां दी होती हैं किन्तु हमने अपने नियमों में विधेयक के स्वीकार होने के पश्चात् उसमें कुछ परिवर्तन करने के लिये सचिव को कोई शक्ति नहीं दी है। यह विधि-उल्लेख आवश्यक है और यह किया जाना चाहिये।

जहां तक मेरे पहले संशोधन का, अर्थात् खंड 2 को निकालने के बारे में जो संशोधन है उसका सम्बन्ध है, उसकी इस कारण आवश्यकता है। जब अन्तिम अधिनियम, अर्थात् संविधान सभा का अधिनियम संख्या 5 स्वीकार किया गया था तो उस समय उस विधेयक में खंड 2 के समान कोई खंड नहीं था। खंड 2 इस प्रकार है–"1889 का निर्बचन-विषय-अधिनियम इस अधिनियम के निर्वाचन के लिये भी लागू होगा और संसद के किसी अधिनियम के निर्वाचन के लिये भी लागू होगा।" पहले के अधिनियम में वह खंड है किन्तु उस विधेयक में वह नहीं था जिसने अधिनियम संख्या 5 का रूप धारण किया था। उस समय मैंने कहा था कि इस प्रकार के एक खंड की आवश्यकता होगी किन्तु डॉ. अम्बेडकर ने कहा था कि इस खंड की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है। यदि अधिनियम संख्या 5 में उसकी आवश्यकता नहीं थी तो इस विधेयक में भी, मेरे विचार से, उसकी आवश्यकता नहीं होनी चाहिये। आखिर कुछ एकरूपता तो होनी ही चाहिये। पहिले अधिनियमों में यह खंड है किन्तु अन्तिम अधिनियम में नहीं है हमें किसी निश्चत नीति के अनुसार मसौदा बनाना चाहिये और जब जो बात समझ में आ जाय उस बात को न रखना चाहिये। इसलिये मैं डॉ. अम्बेडकर से पूछता हूं कि क्या उन्हें अधिनियम संख्या 5 के मसौदे की प्रणाली मान्य है अथवा पहले के अधिनियमों के मसौदों की प्रणाली मान्य है और इस कारण वे इस खंड को रहने देना चाहते हैं या नहीं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं केवल यह निवेदन करता हूं कि उन सभी अधिनियमों में, जिनके द्वारा भारत शासन अधिनियम को संधोधित किया गया है, इस सभा ने इस खंड को स्वीकार किया है। इसलिये एकरूपता बनाये रखने के लिये और इस अधिनियम के निर्वचन के लिये, खंड 2 इस विधेयक का बहुत आवश्यक अंग है।

मेरे मित्र के सुझाव के सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि उसका अर्थ केवल यह है कि हाशिये में 1889 का निर्वचन अधिनियम के सम्बन्धित अध्याय की संख्या का उल्लेख होना चाहिये। इस पर मसौदावार विचार कर सकता है। यदि वह हाशिये में इस प्रकार के उल्लेख की आवश्यकता समझेगा तो निस्संदेह इस पर विचार करेगा। किन्तु मेरा निवेदन है कि 1935 के भारत शासन अधिनियम को संशोधित करने वाले अन्य अधिनियमों के इस खंड के आगे हाशिये में इस प्रकार का उल्लेख नहीं है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** यद्यपि डॉ. अम्बेडकर कहते हैं कि पहले के सभी अधिनियमों में यह खंड है किन्तु अधिनियम संख्या 5 में इस प्रकार का कोई खंड नहीं है। मैंने यह कहा था कि यह रह गया है किन्तु इसके विरुद्ध निर्णय किया गया था।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** वह अधिनियम अन्य अधिनियमों पर निर्भर नहीं था। उसमें निर्वचन अधिनियम के उल्लेख की आवश्यकता नहीं थी।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

(क) "खंड 2 निकाल दिया जाये।"

(ख) "खड 2 के अन्त में यह विधि उल्लेख किया जाये:

'52 & 53 Vict, C.63 (52 और 53 वीआईसीटी, सी 63।)'"

*संशोधन गिर गये।*

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"खंड 2 विधेयक का अंग बना लिया जाये"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

खंड 2 विधेयक का अंग बना लिया गया।

**खण्ड 3**

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** यह केवल विराम सम्बन्धी संशोधन है, जिसे मेरे विचार से, मसौदा-समिति स्वीकार कर लेगी। यदि वह खुली तौर पर स्वीकार नहीं करेगी तो चुपचाप स्वीकार कर ही लेगी।

***श्री एच.वी. पातस्करः** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"खंड 3 में 'alter the name of any province (किसी प्रान्त का नाम बदला जा सकता है)' शब्दों के पश्चात् 'after ascertaining the opinion of the members of the Legislature of the province whose name is proposed to be changed (जिस प्रान्त के नाम को बदलने का प्रस्ताव हो उसके विधान मंडल के सदस्यों की राय लेने के पश्चात्)' शब्द रखे जायें।"

श्रीमान, मैं इन कारणों से इस संशोधन को उपस्थित कर रहा हूं। उद्देश्यों और कारणों के विवरण से यह विदित होता है कि विचाराधीन विधेयक इस सभा में तीन कारणों से उपस्थित किया गया है। पहला कारण यह है कि कुछ प्रान्तीय सरकारों ने यह इच्छा प्रकट की है कि उनके प्रान्तों के नाम बदले जायें। उद्देश्यों और कारणों के विवरण में यही कहा गया है। इस विधेयक को प्रस्तुत करने का दूसरा कारण यह है कि इन प्रान्तीय सरकारों ने यह इच्छा भी प्रकट की है कि प्रान्तों के नाम-संविधान के प्रारम्भ के पूर्व, अर्थात् 26 जनवरी 1950 से पूर्व बदल दिये जायें। तीसरा कारण यह है कि भारत शासन अधिनियम, 1935, में नामों में परिवर्तन की करने के सम्बन्ध में कोई उपबन्ध नहीं है।

श्रीमान, यह सच है कि भारत-शासन अधिनियम, 1935, में किसी प्रान्त का नाम बदलने के सम्बन्ध में कोई उपबन्ध नहीं है। मेरे संशोधन का आधार यह सिद्धान्त है कि जिस प्रान्त का नाम बदलना हो वहां के विधान मंडल से पूछना चाहिये कि इस सम्बन्ध में उसका मत क्या है। मैं आपका ध्यान अनुच्छेद 3 की ओर दिलाता हूं, जिसे यह सभा स्वीकार कर चुकी है। अनुच्छेद 3 में राज्यों के नामों में परिवर्तन करने के सम्बन्ध में उपबन्ध है (आगे सभी प्रान्त राज्य ही कहे जायेंगे)। अनुच्छेद 3 का परन्तुक इस प्रकार है:

"परन्तु इस प्रयोजन के लिये कोई विधेयक राष्ट्रपति की सिफारिश बिना, तथा जहां विधेयक में अन्तर्विष्ट प्रस्थापना का प्रभाव प्रथम अनुसूची के भाग (क) या भाग (ख) में उल्लिखित राज्य या राज्यों की सीमाओं पर अथवा किसी ऐसे राज्य या राज्यों के नाम या नामों पर पड़ता हो वहां जब तक कि विधेयक की पुर:स्थापना की प्रस्थापना के तथा उसके उपबन्ध, इन दोनों के सम्बन्ध में, यथास्थिति, राज्य के विधान-मंडल अथवा राज्यों में से प्रत्येक के विधान मंडल के विचार राष्ट्रपति ने निश्चित रूप से जान लिये हों तब तक, किसी सदन में पुर:स्थापित न किया जायेगा।"

इससे यह स्पष्ट हो गया होगा कि हम इस प्रकार के परिवर्तन के लिये उपबन्ध रख चुके हैं। यदि यह परिवर्तन 26 जनवरी के पश्चात् करने की आवश्यकता पड़े तो यह एक विधेयक को प्रस्तुत करके किया जा सकता है। सम्बन्धित राज्यों के विधान-मंडलों के विचार ज्ञात करने के पश्चात् इस प्रकार के विधेयक को प्रस्तुत करने की आज्ञा दी जा सकती है।

[श्री एच.वी. पातस्कर]

यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि प्रान्तीय सरकारें अपनी इच्छा प्रकट कर चुकी हैं। मैं यह नहीं सकता है कि इस सम्बन्ध में किन प्रान्तीय सरकारों ने अपनी इच्छा प्रकट की है। "आर्यावर्त" नाम के सम्बन्ध में जो विचार-विमर्श हुआ है और जिस सरगर्मी का परिचय दिया गया है उसे ध्यान में रखते हुए, मेरे विचार से, प्रान्तों का नाम बदलना उतना आसान नहीं है जितना कि वह समझा जाता है।

यह तर्क भी उपस्थित किया जा सकता है कि चूंकि प्रान्तीय सरकारें यह इच्छा प्रकट कर चुकी हैं कि नामों में परिवर्तन किया जाना चाहिये, इसलिये इसका अर्थ बहुत कुछ यही है कि विधान-मंडलों के विचार ज्ञात किये जा चुके हैं। मैं यह बताना चाहता हूं कि विधान मंडलों के तथा प्रान्तीय सरकारों के विचार हमेशा समान नहीं होते हैं। विधान मंडलों में लोक-प्रतिनिधि होते हैं और उनके विचार ज्ञात करना प्रान्तीय सरकारों के विचार ज्ञात करने से बिल्कुल भिन्न बात है क्योंकि सरकारों का सम्बन्ध प्रान्तों के प्रतिदिन के प्रशासन सम्बन्धी प्रश्नों ही से रहता है। अनुच्छेद 3 में हमने जिस सिद्धान्त का अनुसरण किया है वह बहुत ही उपयुक्त सिद्धान्त है। उससे जनसाधारण का मत बहुत अच्छी तरह ज्ञात हो सकता है क्योंकि विधान-मंडलों में प्रान्तों के लोक-मत का ही प्रतिनिधित्व होगा।

श्रीमान, बिना अधिक विवरण दिये हुए मैं यह आसानी से बता सकता हूं कि किस प्रकार कठिनाई उत्पन्न हो सकती है। पश्चिमी बंगाल का ही उदाहरण लीजिये। एक बार वहां के लोग पश्चिमी बंगाल का नाम बंगाल रखना चाहते थे। बाद में उन्होंने अपना विचार बदल दिया और यह इच्छा प्रकट की कि इसका नाम पश्चिमी बंगाल ही रहने दिया जाये। संविधान के तृतीय पठन के अवसर पर हमने फिर "पश्चिमी बंगाल" नाम को ही अपनाया। इन बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि हमें कभी किसी नाम को बदलना हो तो हमें साधारणतया अनुच्छेद 3 में वर्णित सिद्धान्त का अनुसरण करना चाहिये। वह सिद्धान्त यह है कि नाम में परिवर्तन सरकार की इच्छा के अनुसार नहीं बल्कि विधान-मंडल की इच्छा के अनुसार करना चाहिये क्योंकि सरकार समय-समय पर बदलती रहती है और विधान-मंडल का निश्चय उससे अधिक दृढ़ होता है।

इसके अतिरिक्त श्रीमान, कोशल-विदर्भ के नाम का ही उदाहरण लीजिये। पहले मसौदे में हमने जिस नाम का उल्लेख किया है वह कोशल-विदर्भ ही है और हमने इस नाम का उल्लेख अवश्य ही वहां की सरकार से परामर्श कर के ही किया होगा। बाद में वहां की सरकार ने अपना विचार बदल दिया और मध्य-प्रदेश के नाम को स्वीकार करना चाहा। इसलिये क्या यह उचित नहीं है कि अनुच्छेद 3 में जो उपयुक्त सिद्धान्त निर्धारित किया गया है उसका हम अनुसरण करें? परिस्थिति के बदलने पर सरकारें भी अपने विचारों को बदल देती हैं। वास्तव में सरकारें लोगों का प्रतिनिधित्व उस अर्थ में नहीं करती हैं जिस अर्थ में प्रान्तों के विधान-मंडल करते हैं।

***अध्यक्षः** मेरे विचार से इस प्रश्न पर इतना अधिक तर्क-वितर्क करने की आवश्यकता नहीं है।

***श्री एच.वी. पातस्करः** मैं एक बात और कहना चाहता हूं और वह यह है अनुच्छेद 3 में एक सिद्धान्त की परिभाषा करके हमने उसे संविधान में स्थान दिया है। अब संविधान स्वीकार होने के केवल एक दिन पूर्व हम उस सिद्धान्त को केवल इस कारण अस्वीकार करना चाहते हैं कि कुछ लोग शीघ्र ही प्रान्तों के नाम बदलना चाहते हैं। आखिर नाम बदलने से अधिक अन्तर नहीं पड़ता। जैसा कि कवि ने कहा है चाहे गुलाब को किसी नाम से क्यों न कहा जाये उसकी खुशबू वही रहेगी। इसलिये अनुच्छेद 3 में जिस सिद्धान्त की परिभाषा की गई है उसी को क्यों न रहने दिया जाये? उसका इस अवसर पर क्यों खण्डन किया जाये? श्रीमान, मैं इस पर ज़ोर देता हूं कि हमने गम्भीरतापूर्वक जिन सिद्धान्तों को निर्धारित किया है उनका यदि हम खण्डन करेंगे तो हम आने वाली पीढ़ियों के सामने एक गलत उदाहरण रखेंगे।

इसलिये मेरी यह प्रार्थना है कि मेरे इस सीधे-साधे संशोधन को सभा के सदस्य स्वीकार पर लें। इस के विरुद्ध केवल यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि इस में कुछ समय लगेगा। प्रान्तों के अधिकांश नाम विदेशियों के रखे हुए हैं। अच्छा यह होगा कि उन्हें विभिन्न विधान-मंडलों के विचार ज्ञात करके बदला जाये। साथ ही उन्हें शांत वातावरण में बदलना चाहिये और इतनी शीघ्रता से न बदलना चाहिये जितनी शीघ्रता से इस विधेयक को प्रस्तुत करके बदलने का प्रयास किया जा रहा है।

***श्री आर.के. सिधवाः** अध्यक्ष महोदय, मेरा संशोधन इस प्रकार हैः

"भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 290 की उपधारा (1) के परन्तुक के अन्त में यह जोड़ दिया जाये, अर्थात्:—

'and any such Order made by the Governor General shall be placed before the Parliament within three days of its making, and the Parliament shall have the right to either accept or reject the name contained in that Order.

(और गवर्नर जनरल का दिया हुआ प्रत्येक ऐसा आदेश उसके दिये जाने के तीन दिन पश्चात् संसद के सामने रखा जायेगा और संसद को उस आदेश में दिये हुए नाम को स्वीकार अथवा अस्वीकार करने का अधिकार होगा।)'"

श्रीमान, धारा 290 का स्वरूप इतना सीमित है कि किसी माननीय सदस्य के लिये, किसी दोष, अथवा किसी ऐसे सुझाव के निवारण के लिये, जो सभा को अथवा देश को मान्य न हो, एक विस्तृत संशोधन उपस्थित करना कठिन है। यह धारा प्रान्तों के नाम बदलने के ही सम्बन्ध में है। इसकी सीमा के अन्दर रहते हुए मेरे लिये इस संशोधन को उपस्थित करने के अतिरिक्त और कोई चारा न

[श्री आर.के सिधवा]

था। इसका उद्देश्य यह है कि किसी प्रान्त के मनमाने ढंग से अपना नाम बदलने के कारण संसद और देशवासियों के अधिकार पर आघात न हो। ऐसे प्रान्तों के प्रति जो अपने नाम इतिहास के आधार पर अथवा अन्य उपयुक्त कारणों से बदलना चाहते हैं मेरे हृदय में पूरा सम्मान है। मेरे मित्र श्री मोहन लाल गौतम ने जो तर्क दिये उन्हीं को दृष्टि में रखकर मैंने इस संशोधन को उपस्थित करना आवश्यक समझा। उन्होंने चुनौती देकर कहा कि उनका प्रान्त अन्य सब प्रान्तों से ऊंचा है *(विघ्न)*। मेरा निवेदन है कि यदि कुछ प्रान्तों की यह मनोवृत्ति है तो इस सभा को इसका अधिकार है कि वह इस प्रकार की मनोवृत्ति समाप्त कर दे। श्रीमान, मुझे इसकी प्रसन्नता है कि उनके प्रान्त के सदस्यों के बीच भी उस प्रान्त का नाम "आर्यावर्त" रखने के सम्बन्ध में मतभेद था।

***अध्यक्ष:** कृपा करके किसी नाम की चर्चा न कीजिये। आप इस विषय के सम्बन्ध में ही अपना मत प्रकट कीजिये।

***श्री आर.के. सिधवा:** श्रीमान, इसका उपाय क्या है? मेरे मित्र श्री पातस्कर ने स्थिति को ठीक समझा और यह कहा कि विधान-मंडल से परामर्श करने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं है। विधानमंडल से परामर्श करने का उद्देश्य भी विफल हो जायेगा क्योंकि वहां के अधिकांश सदस्य कहेंगे "आर्यावर्त अथवा हिन्दुस्तान" के नाम को स्वीकार कीजिये। यदि उसने अपने प्रान्त का नाम हिन्दुस्तान रख दिया, अर्थात् यदि संयुक्त प्रान्त के विधान-मंडल ने अपने प्रान्त का नाम हिन्दुस्तान रख दिया तो होगा? यह देश भविष्य में भारत कहा जायेगा किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि हमने हिन्दुस्तान के नाम को त्याग दिया है। इसलिये श्रीमान, आप कृपा करके मुझे बतायें कि 'हिन्दुस्तान' नाम अपना कर देश के हितों को हानि पहुंचाने से आप संयुक्त प्रान्त को कैसे रोकेंगे? पहले एक बार कांग्रेस समिति में इसके लिये प्रयास किया गया था यद्यपि वह विफल हुआ था। श्रीमान, मैं चाहता हूं कि आप अथवा मसौदा-समिति के सभापति महोदय इस सम्बन्ध में मेरा पथप्रदर्शन करें। श्रीमान, मैं जानना चाहता हूं कि इस सम्बन्ध में हमने कौन से परिमाण रखे हैं। कोई प्रान्त अपना नाम नहीं बदल सकता है। गवर्नर जनरल ही उसका नाम बदल सकता है।

***पंडित बाल कृष्ण शर्मा** (संयुक्त प्रान्त: जनरल): यदि मेरे माननीय मित्र को इससे संतोष हो सकता है तो मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि मुझे "हिन्दुस्तान" शब्द से घृणा है।

***श्री आर.के. सिधवा:** यह ठीक है किन्तु 1939 में आपने अपनी प्रान्तीय कांग्रेस-समिति का नाम हिन्दुस्तान कांग्रेस-समिति रखने का प्रस्ताव रखा था।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्त प्रान्त: जनरल): आप हमें उन नामों को बता दें जिन्हें आप पसंद नहीं करते हैं।

***अध्यक्ष:** हम इस विषय पर बेकार समय नष्ट कर रहे हैं और इसके सम्बन्ध में बीच में बोलने की भी आवश्यकता नहीं है। माननीय सदस्य अपने भाषण को अपने संशोधन तक ही सीमित रखें।

***श्री आर.के. सिधवा:** मैं केवल यह चाहता हूं कि प्रान्तीय सरकार के अथवा अन्य लोगों के विचारों को गवर्नर जनरल के स्वीकार कर लेने पर जो स्थिति उत्पन्न होगी उस स्थिति में देश के हितों की रक्षा करने की व्यवस्था की जाये क्योंकि सम्भावना इसी की है कि गवर्नर जनरल सम्बन्धित प्रान्त के सुझाव को स्वीकार कर लेगा। इस दशा में यदि जो नाम स्वीकार किया गया हो वह भारत के हितों की दृष्टि से उपयुक्त न हो तो, यदि मेरे संशोधन को स्वीकार किया गया, संसद को उस पर विचार करने का अधिकार प्राप्त हो जायेगा। इस संविधान सभा के विघटन के पश्चात् इस विषय पर संसद ही विचार कर सकेगी। मेरे विचार से इन बातों को रोकने का एकमात्र उपाय यही है। यह कहा गया है कि गवर्नर जनरल हितों को सुरक्षित रखेगा किन्तु मेरे विचार से यह उपयुक्त उपचार नहीं है। मेरे विचार से ऐसे महत्वपूर्ण विषय के सम्बन्ध में संसद् को ही निर्णय करना चाहिये। मेरे मित्र श्री पातस्कर ने ठीक ही कहा है कि चूंकि हम जल्दी में हैं इसलिये हम इस प्रकार की व्यवस्था कर रहे हैं। इस विषय के सम्बन्ध में हम बिना किसी आवश्यकता के जल्दी क्यों करें। हम इस सम्बन्ध में 26 जनवरी के पश्चात् निर्णय क्यों न करें? शांत वातावरण में तथा सभी लोगों से परामर्श करके इस प्रकार का निर्णय करना चाहिये। इस सभा में एक या दो नामों के सम्बन्ध में निर्णय किया गया था और, जैसा कि श्री पातस्कर बता चुके हैं, थोड़े ही समय में इन दो नामों को बदलना पड़ा।

किसी ऐसी प्रणाली की सुरक्षा के लिये जिससे कोई ऐसा नाम स्वीकार न किया जा सके जिससे देश के हितों की हानि होती हो, मुझे कोई अन्य सुझाव नहीं देना है। मैं केवल इसी प्रणाली का सुझाव रखता हूं। मुझे आशा है कि मेरे मित्र डॉ. अम्बेडकर कृपा करके मेरे सुझाव को ध्यान में रखेंगे क्योंकि मैंने उसे सदिच्छा से ही उपस्थित किया है। यदि उनके अन्य कोई सुझाव है तो उन्हें मुझे बता दिया जाय क्योंकि मैं उन्हें स्वीकार करने के लिये तैयार हूं। इस सुझाव को मैंने अपने पहले अनुभव के आधार पर सदिच्छा से ही प्रस्तुत किया है। मुझे आशा है कि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जायेगा, अथवा देश के हितों की रक्षा के लिये विकल्पत: अन्य कोई सुझाव रखा जायेगा।

***अध्यक्ष:** श्री जसपत राय कपूर। मैं माननीय सदस्यों से प्रार्थना करता हूं कि वे किसी नाम-विशेष के गुण दोषों पर, अथवा पहले के किसी व्यक्ति के कार्य पर विचार न करें। वे विचाराधीन प्रस्ताव तक ही अपने भाषण को सीमित रखें।

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्त प्रान्त: जनरल): अध्यक्ष महोदय, श्री पातस्कर तथा श्री सिधवा ने जो संशोधन उपस्थित किये हैं उन दोनों का मैं विरोध करता

[श्री जसपतराय कपूर]

हूं। प्रान्तों के नामकरण प्रश्न का अब बहुत अधिक महत्व हो गया है। किसी नये प्रान्त के निर्माण को, अथवा किसी प्रान्त के क्षेत्र को बढ़ाने अथवा घटाने को माननीय सदस्य जितना महत्व देते हैं उससे कहीं अधिक महत्व इस प्रश्न का हो गया है क्योंकि मैं देखता हूं कि श्री पातस्कर के संशोधन का यह उद्देश्य है कि यदि गवर्नर जनरल किसी प्रान्त का नाम बदलने के सम्बन्ध में कोई आदेश निकाले तो उसे आदेश निकालने के पूर्व प्रान्तीय विधान-मंडल की राय लेनी चाहिये, और श्री सिधवा के संशोधन का उद्देश्य है कि प्रान्त का नाम बदलने के सम्बन्ध में गवर्नर जनरल यदि कोई आदेश निकाले तो उसके पश्चात उसे संसद के समक्ष रखना चाहिये और गवर्नर जनरल ने जो आदेश निकाला हो उसे स्वीकार या अस्वीकार करने का अधिकार संसद को प्राप्त होना चाहिये। धारा 290 के अधीन गवर्नर जनरल जो आदेश किसी प्रान्त को बनाने, अथवा किसी प्रान्त की सीमाओं में परिवर्तन करने के सम्बन्ध में निकालेगा उन्हें सारा देश चुपचाप स्वीकार कर लेगा और न तो सम्बन्धित प्रान्त के विधान-मंडल की राय ली जायेगी और न संसद का ही इस सम्बन्ध में कोई अधिकार होगा। मुझे यह एक विचित्र बात दिखाई देती है कि किसी प्रान्त के नाम बदलने के प्रश्न को तो इतना अधिक महत्व दिया जाता है और जहां किसी प्रान्त को अस्तित्व में लाने का प्रश्न उठ खड़ा होता है उसकी ओर माननीय सदस्य कुछ भी ध्यान नहीं देते हैं। मैं विवेदन करता हूं कि जिस प्रकार संयुक्त प्रान्त को इस वाद-विवाद में लाया गया है उससे हमें क्षोभ हुआ है क्योंकि हम संयुक्त प्राप्त के लोग हमेशा से यही समझते आये हैं कि हमारे काम का सारा देश समर्थन करेगा। जैसा कि मेरे माननीय मित्र श्री मोहन लाल गौतम बता चुके हैं, हमारे प्रान्त में प्रान्तीयता का सर्वथा अभाव है। इसलिये हमने यह विचार किया था कि अन्य प्रान्तों के लोग इसके लिये हमें कुछ श्रेय देंगे और कम से कम हमें अपने प्रान्त का कोई यथेष्ठ नाम रखने की स्वतन्त्रता देंगे।

***अध्यक्षः** यहां आपके प्रान्त का कोई प्रसंग नहीं है।

***श्री जसपतराय कपूरः** श्रीमान, मैं इसकी केवल आकस्मिक रूप से चर्चा कर रहा था। समय के अभाव के कारण मैं अब इस सम्बन्ध में और कुछ नहीं कहूंगा।

मैं श्री पातस्कर के संशोधन का इस कारण विरोध करता हूं कि वह धारा 290 के अनुरूप नहीं है और साथ ही यदि उसे स्वीकार कर लिया गया तो प्रान्त का विधान मंडल तथा वहां की सरकार अकारण एक-दूसरे का विरोध करने लगेंगे क्योंकि श्री पातस्कर यह नहीं चाहते कि भारत-शासन अधिनियम की धारा 290 के परन्तुक में संधोधन किया जाये, जिसमें यह कहा गया है कि इस धारा के अधीन आदेश निकालने के पूर्व गवर्नर जनरल को प्रान्तीय सरकार की राय लेनी चाहिए। इस परन्तुक के अधीन प्रान्तीय सरकार की राय लेनी होगी। श्री पातस्कर का यह सुझाव कि विधान-मंडल की भी राय लेनी चाहिए। इस प्रकार उसका आशय यह है कि पहले विधान-मंडल की राय लेनी चाहिये और उसके

पश्चात् सरकार की राय लेनी चाहिये। क्योंकि परन्तुक के अधीन यह करना आवश्यक है। यदि यह मान लिया जाय कि सरकार और विधान-मंडल की राय एक ही होगी तो श्री पातस्कर के संधोधन की कोई आवश्यकता नहीं रह जायेगी। यदि उनमें मतभेद हो तो...

***श्री एच.वी. पातस्करः** ऐसे उदाहरण हैं जब उनमें मतभेद रहा है।

***श्री जसपतराय कपूरः** यदि इस प्रकार के उदाहरण हैं तो कम से कम इस संविधान-सभा में बैठकर हमें इस प्रकार के मतभेद को प्रोत्साहित न करना चाहिये। हमारा उद्देश्य यह होना चाहिये कि विधान-मंडल और सरकार के बीच मतैक्य रहे और इस प्रकार के मतभेद का कोई अवसर न आये। इसलिए मेरा निवेदन है कि यह संशोधन इस प्रसंग में बेमेल लगता है।

श्री सिधवा के संशोधन के सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि श्री सिधवा बहुत कुशाग्र बुद्धि वाले पुरुष हैं और अनेक प्रकार के संशोधनों की कल्पना करने में समर्थ हैं। किन्तु मैं नहीं समझता था कि वे एक ऐसे संशोधन की भी कल्पना कर सकते हैं जो बहुत कुछ निरर्थक हैं। उनका यह सुझाव है कि गवर्नर जनरल का आदेश संसद के समक्ष रखा जाना चाहिये और संसद को उसे स्वीकार करने अथवा अस्वीकार करने का अधिकार होना चाहिये। इसमें कोई संदेह नहीं कि उसे आदेश में संशोधन करने का अधिकार नहीं होना चाहिये। वह या तो गवर्नर जनरल के मंजूर किये हुये नाम को स्वीकार कर सकती है या अस्वीकार कर सकती है। यदि आदेश में प्रस्तावित किये हुये नाम को संसद अस्वीकार कर दे तो क्या होगा? इससे एक बात रह जायेगी और उसकी पूर्ति नहीं हो सकेगी। इसीलिये मैं निवेदन कर रहा हूं कि श्री सिधवा का संशोधन बहुत कुछ निरर्थक ही है। इसके अतिरिक्त श्री सिधवा के संशोधन में कहा गया है कि ये शब्द वर्तमान परन्तुक में जोड़ दिये जाने चाहिये। इसका अर्थ यह है कि श्री सिधवा का संशोधन धारा 290 के अधीन गवर्नर जनरल के निकाले हुये सभी आदेशों पर लागू होगा जो कि किसी नये प्रान्त को अस्तित्व में लाने, किसी प्रान्त की सीमा में परिवर्तन करने आदि के सम्बन्ध में होंगे। मेरे विचार से श्री सिधवा का उद्देश्य यह नहीं है कि उनके संशोधन का आशय इतना अधिक विस्तृत हो। किन्तु उसकी शब्दावलि के फलस्वरूप वह धारा 290 के अधीन निकाले हुए गवर्नर जनरल के सभी आदेशों पर लागू होगा। मेरे विचार से श्री सिधवा ने अपने संशोधन की ओर यथेष्ट ध्यान नहीं दिया है। यदि वे उस पर फिर विचार करें तो मुझे विश्वास है कि वे उस पर मत लिये जाने के लिये जोर नहीं देंगे। इन कारणों से मैं इन दोनों संशोधनों का विरोध करता हूं।

***श्री एम. थीरुमल राव** (मद्रासः जनरल): श्रीमान क्या मैं एक शब्द कह सकता हूं?

***अध्यक्ष:** मैं किसी सदस्य को बोलने से नहीं रोक सकता। किन्तु सदस्यों को सम्भवत: स्मरण होगा कि संविधान पर अभी कई सदस्य बोलना चाहते हैं।

***श्री एम. थीरुमल राव:** श्रीमान, मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि मैं केवल बहस में भाग लेने के लिये अपनी जगह से नहीं उठा हूं। इस विधेयक के सम्बन्ध में मैं एक बात कहना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** मैं केवल यह कहूंगा कि इस प्रकार माननीय सदस्य केवल उन लोगों का समय लेंगे जो बोलना चाहते हैं किन्तु जिन्हें अभी तक बोलने का अवसर नहीं मिला है।

संविधान के सम्बन्ध में सदस्य महोदय बोल चुके हैं।

***माननीय सदस्य:** अब बहस बन्द की जाये।

***अध्यक्ष:** बहस बन्द करने की मांग की गई है और मैं इस ओर सदस्य महोदय का ध्यान आकर्षित करता हूं।

***श्री एम. थीरुमल राव:** श्रीमान, क्या यह उचित है कि, चूंकि बहस बन्द करने का प्रस्ताव क्या है, इसलिये मुझ से बैठ जाने को कहा जाये?

श्रीमान, मुझे उस सभा के समक्ष एक सीधा सादा प्रस्ताव रखना है। मुझे इस की चिन्ता नहीं है कि यह सभा इस प्रस्ताव को स्वीकार करती है या अस्वीकार करती है। मेरी समझ में नहीं आता कि जब सरकार सभा के समक्ष किसी प्रस्ताव को रखे तो वह उसके उचित अनुचित होने के सम्बन्ध में निर्णय करने के अवसर से क्यों वंचित की जाये। यह विधेयक सभा के समक्ष [26 जनवरी के पश्चात् रखा जा सकता है। यदि संविधान के अनुच्छेद 3 के अधीन वह प्रस्ताव सभा के समक्ष] रखा जायेगा तो तब तक कोई बात नहीं होगी। इस सभा में जो बहस हुई है उसे दृष्टि में रखते हुए सरकार इस विधेयक को इस समय वापस ले सकती है।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम: जनरल): श्रीमान, क्या मैं...

***अध्यक्ष:** कृपया अब अधिक बहस न कीजिये।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** मैं केवल यह निवेदन करना चाहता हूं कि यदि कोई प्रान्तीय सरकार अपने प्रान्त का नाम बदलने के लिये तैयार हो [जाय, जैसे कि आसाम की सरकार तैयार] गई थी, जो "आसाम" का नाम "अस्समे" रखना चाहती थी, और प्रधान मंत्री ने...

***अध्यक्ष:** यह प्रश्न इस विधेयक के सम्बन्ध में नहीं उठता।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** नाम में इस प्रकार का परिवर्तन करने के लिये एक संशोधन भेजा गया था किन्तु उसे उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी गई थी।

किन्तु आसाम के प्रधानमंत्री से मुझे ज्ञात हुआ है कि सरकार इसके लिये सहमत हो गई है कि...

***अध्यक्षः** आप यथोचित अवसर पर इस प्रश्न को उठा सकते हैं किन्तु इस प्रसंग में नहीं उठा सकते।

**श्री रोहिणी कुमार चौधरीः** किन्तु श्रीमान, मुझे...

***अध्यक्षः** मैं यह निर्णय सुना चुका हूं कि यह प्रश्न इस समय नहीं उठता।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान, पहले में भी पातस्कर के संशोधन को उठाता हूं। मैं देखता हूं कि इसे धारा 290 में स्थान नहीं दिया जा सकता है। यह प्रतीत होता है कि मेरे मित्र ने इस ओर ध्यान नहीं दिया है कि धारा 290 के खण्ड (1) के विभिन्न उपखण्डों के सम्बन्ध में एक परन्तुक है। यह परन्तुक सभी उपखण्डों पर, अर्थात् उपखण्ड (क), (ख), (ग) और (घ) पर लागू होता है। यदि वे उस उपखण्ड को देखें तो उन्हें ज्ञात हो जायेगा कि उनके संशोधन को स्वीकार करने से नवीन खण्ड, अर्थात् उपखण्ड (ङ), दुहरी शर्तों के अधीन ही प्रवर्त्तन में आ सकेगा। उपखण्ड (ङ) उनके संशोधन की शर्त के अधीन प्रवर्त्तन में आयेगा। वह शर्त इन शब्दों द्वारा रखी गई है—"जिस प्रान्त के नाम को बदलने का प्रस्ताव हो उसके विधान-मंडल के सदस्यों की राय लेने के पश्चात।" इसके अतिरिक्त उपखण्ड (ङ) में यह परन्तुक भी रहेगा–"परन्तु गवर्नर जनरल प्रान्त की सरकार की राय लेगा।" इन दो शर्तों के कारण बहुत कठिन स्थिति उत्पन्न हो जायेगी इस संशोधन के अनुसार गवर्नर जनरल को अवश्य ही विधान मंडल की राय लेनी होगी। साथ ही धारा 290 के परन्तुक के अधीन उसे प्रान्त की सरकार की राय लेनी ही होगी। इस प्रकार उसे दुहरी कठिनाई का सामना करना पड़ेगा, अर्थात् उसे दो विभिन्न निकायों से परामर्श करना होगा। यह कोई आसान काम नहीं होगा। साथ ही यह बात नहीं है कि उपखण्ड (क) से लेकर उपखण्ड (घ) तक सब एक ही परन्तुक हो और उपखण्ड (ङ) में हो।

***श्री एच.वी. पातस्करः** यह धारा है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं यह कहता हूं। आप यह कैसे जानते है? मुझे यह दिखाई देता है कि इस प्रकार का सुझाव प्रस्तुत करके आप अपने को तथा गवर्नर जनरल को कठिनाई में डाल रहे हैं। चाहे यह सुझाव कितना ही उपयुक्त क्यों न हो किन्तु इस समय इसे स्वीकार करना उचित नहीं होगा।

श्री सिधवा के संशोधन के सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि उससे इस अनुच्छेद का, तथा नवीन संविधान के उपबन्धों का मतलब ही खत्म हो जाता है: वे संसद की चर्चा करते हैं और यह मांग करते हैं कि गवर्नर जनरल का आदेश उसके निकाले जाने की तिथि से तीन दिन के अन्दर संसद के समक्ष रखा जाना चाहिये।

[श्री बी.आर. अम्बेडकर]

संसद की चर्चा करते हुए भी सिधवा संभवत: यह भूल गये थे कि उससे अभिप्रेत है वह विधान-मंडल जो 26 जनवरी 1950 को अस्तित्व में आयेगा। उस तिथि को गवर्नर जनरल नहीं रहेगा। और यह धारा 290 और यह उपखण्ड (ङ) भी, जिसे प्रविष्ट कराने का मैं प्रयास कर रहा हूं, अस्तित्व में नहीं रहेगा। 26 जनवरी को नवीन संविधान के अनुच्छेद 3 के उपबन्ध ही प्रवर्तन में रहेंगे। मुझे खेद है कि जो कुछ मैंने स्पष्ट करने का प्रयास किया है उस की ओर उन्होंने यथेष्ठ ध्यान नहीं दिया है।

***श्री आर.के. सिधवा:** गवर्नर जनरल जो कुछ करेंगे वह राष्ट्रपति के लिये भी बन्धनकारी होगा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मुझे यह दिखाई देता है कि ये दोनों सुझाव व्यवहारिक नहीं हैं। जहां तक इस विषय का सम्बन्ध है कि संसद से राय ली जाये या न ली जाये, हमें प्रश्नों पर विचार करना होगा। उनमें से एक यह है कि कुछ प्रान्तों का यह विचार है कि भारत शासन अधिनियम 1935 के अधीन थे जिन नामों से ज्ञात हैं वे कर्ण मधुर नहीं हैं और वे संविधान के प्रारम्भ की तिथि से कर्ण मधुर नामों से ज्ञात होना पसन्द करेंगे। पिछली बार जब इस विषय पर बहस हुई थी तो संविधान सभा ने यह विचार प्रकट किया था कि जब कुछ प्रान्तों का स्वयं यह मत है कि उनके नाम अच्छे नहीं हैं तो कोई ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये, जिससे गवर्नर जनरल इस संविधान के प्रारम्भ से पूर्व इन प्रान्तों की इच्छा पूरी करने के लिय आवश्यक कार्यवाही कर सके। इसलिए मेरे विचार से इस प्रकार के उपबन्ध की आवश्यकता है।

साथ ही यह भय भी प्रकट किया गया है कि कुछ प्रान्त गवर्नर जनरल के समक्ष ऐसे नामों का सुझाव रख सकते हैं जो अन्य प्रान्तों को मान्य न हों और इस प्रकार इस सभा ने जो नाम अस्वीकार किये हैं उन्हें बिना संविधान सभा को बनाये हुए, अथवा बिना सम्बन्धित प्रान्तीय विधान मंडलों की सहमति प्राप्त किये हुए, रख सकते हैं। मेरे विचार से इस प्रकार का सुझाव इस विधेयक द्वारा संशोधित धारा 290 का बहुत खींचातानी का अर्थ निकाल कर ही रखा गया है। धारा 290 के अधीन गवर्नर जनरल को इस विषय के सम्बन्ध में स्वविवेक से निर्णय करने का पूरा अधिकार है और उसके लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह प्रान्तीय सरकार के किसी सुझाव के अनुसार अथवा, विधान मंडल की राय के अनुसार, कार्य करे क्योंकि यदि श्री पातस्कर का संशोधन स्वीकार किया गया तो उसे विधान मंडल की भी राय लेनी होगी। वह स्वतन्त्रता से कार्यवाही कर सकता है और यदि इस सम्बन्ध में उसे कोई मन्त्रणा दे सकता है तो वह केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल ही है। धारा 290 में केवल यह कहा गया है कि प्रान्तीय सरकार की राय ली जानी चाहिये। इनका अर्थ यह है कि जो कोई नाम भी प्रस्तुत किया जायेगा उसे

गवर्नर जनरल स्वीकार कर लेगा। मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी संदेह नहीं है कि संयुक्त प्रान्त के नाम के सम्बन्ध में प्रोफेसर सक्सेना के सुझाव पर इस सभा में जो बहस हुई है, और जो विचार प्रकट किये गये हैं, उन पर केन्द्रीय कार्यपालिका तथा गवर्नर जनरल अवश्य ही विचार करेंगे और तभी अनुच्छेद 290 के प्रस्तावित संशोधन के अधीन कार्यवाही की जायेगी।

***अध्यक्षः** अब मैं संशोधनों पर मत लूंगा। मि. नजीरुद्दीन अहमद, क्या आप चाहते हैं कि आपके संशोधन पर मत लिया जाये? वह केवल विरामों के सम्बन्ध में ही है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** उसे मसौदा समिति के लिये छोड़ दिया जाये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** यह एक गलत संशोधन है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** यदि उस पर खुले तौर पर मत लिया गया तो वह अस्वीकार कर दिया जायेगा अन्यथा मसौदा समिति उसे स्वीकार भी कर सकती है।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है किः

"खंड 3 में 'alter the name of any Province (किसी प्रान्त का नाम बदला जा सकता है)' शब्दों के पश्चात 'after ascertaining the opinion of the members of legislature of the Province whose name is proposed to be changed' (जिस प्रान्त के नाम को बदलने का प्रस्ताव हो उसके विधान मण्डल के सदस्यों की राय लेने के पश्चात्)' शब्द रखे जायें।"

*संशोधन गिर गया।*

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है किः

भारत-शासन-अधिनियम, 1935 की धारा 290 की उपधारा (1) के परन्तुक के अन्त में यह जोड़ दिया जाये, अर्थात्:—

"and any such order made by the Governor-Genreral shall be placed before the Parliament within three days of its making, and the Parliament shall have the right to either accept or reject the name contained in that order."

(और गवर्नर जनरल का दिया हुआ प्रत्येक ऐसा आदेश उसके दिये जाने के तीन दिन पश्चात् संसद के सामने रखा जायेगा और संसद को उस

[अध्यक्ष]

आदेश में दिये हुए नाम को स्वीकार अथवा अस्वीकार करने का अधिकार होगा।)'"

*संशोधन गिर गया।*

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"खण्ड 3 को विधेयक का अंग बना दिया गया।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

खण्ड 3 विधेयक का अंग बना लिया जाये।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावना को विधेयक का अंग बना लिया जाये।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

प्रस्तावना को विधेयक का अंग बना लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"नाम को विधेयक का अंग बना लिया जाये।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

नाम को विधेयक का अंग बना लिया गया।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"भारत-शासन-अधिनियम, 1935 को आगे संशोधित करने के लिये इस सभा द्वारा निश्चित किये गये विधेयक को स्वीकार कर लिया जाये।"

***श्री तजम्मुल हुसैन** (बिहार मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, हमारे सामने एक विधेयक रखा गया हैं जिस का उद्देश्य 1935 के भारत-शासन-अधिनियम को संशोधित करना है, जिस का 26 जनवरी, 1950 को निरसन हो जायेगा। इस लिये श्रीमान इस विधेयक की केवल दो महीने के लिये आवश्यकता है। आखिर इतनी जल्दी क्यों की जा रही है? भारत-शासन-अधिनियम में प्रान्तों के नाम बदलने के सम्बन्ध में कोई उपबन्ध नहीं है। हम एक प्रान्त का नाम, अथवा एक से अधिक प्रान्तों का नाम बदलना चाहते हैं। इसी कारण यह विधेयक उपस्थित किया गया है। मेरी समझ में नहीं आता कि इस विधेयक को लाने की आवश्यकता ही क्या है। मैं इस पूरे विधेयक का विरोध करने के लिए यहां आया हूं। मैं समझता हूं कि हम दो महीने तक प्रतीक्षा कर सकते हैं। हम दो महीने तक प्रतीक्षा न

करके चाहते हैं कि यह विधेयक कल ही से, अर्थात् 26 जनवरी से प्रभाव में आ जाय। जब हम इस संविधान को स्वीकार कर लेंगे तो भारत-शासन-अधिनियम का ही निरसन हो जायेगा। हमने संविधान में इसका उल्लेख किया है कि भारत-शासन-अधिनियम, 1935, 26 जनवरी 1950 से निरसित हो जायेगा। तब प्रान्तों के नाम बदलने के सम्बन्ध में इतनी जल्दी क्यों की जा रही है? उन्हें दो महीने बाद बदला जा सकता है। आप चाहते हैं कि संयुक्त प्रान्त का, अथवा अन्य प्रान्तों का नाम अभी बदल दिया जाय और ये नये नाम 26 जनवरी से प्रभाव में आ जायें। इस पर मुझे बहुत आपत्ति है। हम इस संविधान सभा पर प्रति दिन 30,000 रु. व्यय कर रहे हैं। हम दिन में पांच घंटे काम करते हैं। इसका अर्थ यह है कि हम प्रति घंटा, 6,000 रु. व्यय करते हैं। इस विधेयक को मैं बिल्कुल ही अनावश्यक समझता हूं किन्तु इस पर बोलते हुए हमें एक विधेयक को मैं बिल्कुल की अनावश्यक समझता हूं किन्तु इस पर बोलते हुए हमें एक घंटा बीस मिनट हो गये हैं और जब तक मैं अपना भाषण समाप्त करूंगा डेढ़ घंटा हो जायेगा। इसका अर्थ यह है कि 9,000 रु. व्यर्य में नष्ट हो जायेंगे, क्योंकि मैं समझता हूं कि हम समय नष्ट ही कर रहे हैं। श्रीमान, इन शब्दों के साथ मैं इसका विरोध करता हूं। मेरे विचार से इस पर मत नहीं लेना चाहिये और इसे वापस ले लेना चाहिये। इन शब्दों के साथ, श्रीमान, मैं इस पूरे विधेयक का विरोध करता हूं।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"भारत-शासन-अधिनियम, 1935 को आगे संशोधन करने के लिये इस सभा द्वारा निश्चित किये गये विधेयक को स्वीकार कर लिया जाये।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

---

## संविधान का मसौदा–(जारी)

***अध्यक्षः** अब हम संविधान के मसौदे पर विचार करेंगे। मैंने यह विचार किया था कि इस विधेयक पर पौन घंटे से अधिक समय नहीं लगेगा, किन्तु इस पर डेढ़ घंटा लग गया है। सवा दस बजे इस कार्य को आरम्भ करने पर जितने अधिक वक्ता बोल सकते थे उतने अब नहीं बोल सकेंगे। मेरे सामने जो सूची है उसमें अब भी लगभग बीस नाम हैं। मैंने विचार किया था कि आज पन्द्रह सदस्य बोल लेंगे किन्तु अब मैं इतने सदस्यों को बालने की आज्ञा नहीं दे सकूंगा। बोलने वाले सदस्यों से मेरा अनुरोध है कि वे कम से कम समय लें ताकि इस बहस में अधिक से अधिक सदस्य भाग ले सकें। मैं इस बहस को आरम्भ से ही सुनता रहा हूं और मैं सदस्यों को विश्वास दिलाता हूं कि मैं ने प्रत्येक सदस्य का प्रत्येक शब्द तथा प्रत्येक वाक्य सुना है और मैं यह कह सकता हूं कि अब कोई सदस्य कोई नई बात नहीं कहेगा। इस अवसर पर बोलने से सभा संविधान के पूर्ण दोषों पर विचार करने के लिये कोई नई सूचना अथवा नया ज्ञान प्राप्त नहीं करेगी। इस समय बोलने का उद्देश्य केवल यह हो सकता है कि सदस्यों के नामों का उल्लेख हो जाये ताकि जब प्रतिवेदन प्रकाशित हो तो उन्हें ज्ञात हो सके कि उन्होंने

[अध्यक्ष]

भी विधेयक पर होने वाली अन्तिम बहस में भाग लिया है। इस उद्देश्य की पूर्ति एक वाक्य कहकर भी हो सकती है। मैं उन्हें आश्वासन देता हूं कि यदि वे इस मसौदे के सम्बन्ध में एक वाक्य भी कहेंगे तो उनके नामों का उल्लेख रहेगा। माननीय सदस्यों से इतना कहकर मैं उनसे निवेदन करता हूं कि वे बहस को आरम्भ करें।

***श्री फ्रैंक ऐंथनी** (मध्य प्रान्त और बरार जनरल): अध्यक्ष महोदय, आपने जिस शील और शिष्टता के साथ इस सभा की अध्यक्षता की है उसके लिये मैं सबसे पहले आपको धन्यवाद देता हूं। आपने दुष्कर तथा उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य को पूरा करने के लिय मसौदा-समिति की जो प्रशंसा की है वह सर्वथा उचित ही है। मैं कुछ शब्दों में अपनी दाहिनी और बैठे हुए अपने माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर की विशेष रूप से प्रशंसा करना चाहता हूं। हममें से कोई व्यक्ति भी इसकी आसानी से कल्पना नहीं कर सकता कि इस वृहत ग्रंथ को तैयार करने में; जिसमें बहुत दुरूह विषयों की चर्चा की गई है, कितनी वृद्धि लगानी पड़ी होगी और कितना परिश्रम करना पड़ा होगा। कुछ अवसरों पर मैं डॉ. अम्बेडकर के विचारों से सहमत नहीं रहा हूं। किन्तु मुझे यह देखकर प्रसन्नता हुई है कि उनका केवल सैद्धान्तिक बातों पर ही नहीं बल्कि अनेक प्रकार के विवरण पर भी बहुत अधिकार है तथा वे अपना तर्क स्पष्ट शब्दों में उपस्थित करने में भी समर्थ हैं। यह कहा गया है कि इस संविधान को लोगों ने विभिन्न भावनाओं से स्वीकार किया है। यह स्वभाविक ही था क्योंकि इस संविधान में विभिन्न भावनाओं का तथा विभिन्न आदर्शों का समावेश है। मेरे विचार से इसमें आदर्शवाद तथा यथार्थवाद के बीच का रास्ता अपनाया गया है। मुझे विदित है कि मेरे कुछ आदर्शवादी मित्रों ने इसकी आलोचना की है। वे चाहते थे कि इसमें इंजील के दस आदेशों के समान आदर्शवादी बातें ही होतीं। किन्तु व्यवहार में प्रशासन और राजनीति की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, इस दृष्टि से उनका कुछ भी महत्व न रह जाता।

जैसा कि मैं कह चुका हूं हमने इस संविधान में बहुत से आदर्शों का समावेश किया है जिनके कारण यह संविधान चित्ताकर्षक और प्रेरणापूर्ण हो गया है। साथ ही हमने इसका आधार केवल भौतिक ही नहीं रखा है क्योंकि ऐसा करने पर यह संविधान प्रेरणाशून्य हो जाता। श्रीमान, मैं यह अनुभव करता हूं कि यह संविधान दोषमुक्त नहीं है किन्तु साथ ही मैं यह भी समझता हूं कि इसके निर्माण में हमने लोकतंत्रात्मक प्रणाली का ही अनुसरण किया है, इसके निर्माण में सावधानी से विचार किया गया है, बहुत ही छान-बीन की गई है और तर्क-वितर्क तथा कटु वाद-विवाद हुआ है। एक बार तो वाद-विवाद इतना कटु हो गया था कि मैंने यह विचार किया था कि निर्णय बल-प्रयोग से ही किया जा सकेगा। किन्तु अन्त में विभिन्न प्रश्नों का विश्लेषण करते हुए सभी ने सहिष्णुता तथा सहनशीलता का ही परिचय दिया।

जहां तक अल्पसंख्यक-विषयक उपबंधों का सम्बन्ध है, मैं आंग्ल-भारतीय समुदाय के अतिरिक्त अन्य किसी अल्पसंख्यक वर्ग की ओर से बोलने का अधिकारी नहीं हूं। इस संविधान में आंग्ल-भारतीय समुदाय के प्रति जो उदारता दिखाई गई है उसकी मैंने अनेक बार प्रशंसा की है। आंग्ल-भारतीय समुदाय के प्रति जो उदारतापूर्ण व्यवहार किया गया है उसके लिये मैं इस समय फिर अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूं और उसकी प्रशंसा करता हूं।

अब मैं संविधान के कुछ अंगों के सम्बन्ध में थोड़े से शब्द कहूंगा। मैं अपने माननीय मित्र पंडित हृदय नाथ कुंजरू के इस विचार से सहमत हूं कि समझदारी इसी में थी कि हम एकाएक वयस्क मताधिकार प्रदान न करते। मैं आपके सामने इंग्लिस्तान का उदाहरण रखना चाहता हूं और यह निवेदन करना चाहता हूं कि इस सम्बन्ध में उसका क्या अनुभव रहा है। मुझे यह विदित है कि हम अन्य देशों के उदाहरणों को तथा उनके अनुभव को पवित्र नहीं समझते हैं किन्तु मताधिकार के सम्बन्ध में आखिर इंग्लिस्तान का क्या अनुभव रहा है? इंग्लिस्तान में 19वीं शताब्दी में ही संसदात्मक प्रतिनिधि सरकार स्थापित हो चुकी थी किन्तु यहां 1928 तक सार्वभौम मताधिकार, अर्थात् वयस्क मताधिकार नहीं प्रदान किया गया। हममें से कुछ लोग बिना लोकतंत्र का स्वरूप समझे हुए, और बिना उसके उद्देश्यों को जाने हुए उसकी दुहाई देते हैं किन्तु जहां तक मैं समझता हूं केवल सिरों की गणना ही लोकतंत्र नहीं है। लोकतंत्र में कम से कम यह सिद्धान्त तो सन्निहित है ही कि मताधिकार का प्रयोग यदि तर्कपूर्ण ढंग से नहीं तो कम से कम सामान्य बुद्धि से तो किया ही जाये। श्रीमान, मेरी यह धारणा रही है कि यदि इस सम्बन्ध में हम राजनीतिज्ञता का आश्रय न लेकर बुद्धिमत्ता का आश्रय लेते तो हम इस दिशा में जल्दी में कदम नहीं उठाते। हम एकाएक वयस्क मताधिकार प्रदान न करते बल्कि उसे आंशिक रूप से प्रदान करते। हम धीरे-धीरे प्रदान न करते बल्कि आंशिक रूप से प्रदान करते। अगले निर्वाचन में, अथवा उससे अगले निर्वाचन में, मतदाता निरक्षर ही होंगे और वे बिना राजनैतिक प्रश्नों का तर्कपूर्ण ढंग से विश्लेषण किये हुए मत देंगे किन्तु मुझे आशा है कि वे खोखले तथा भ्रामक नारों से प्रभावित होकर झूठे राजनैतिक आदर्शों के पीछे नहीं दोड़ेंगे। यदि उन्होंने यह किया तो इसके फलस्वरूप अराजकता तो फैलेगी ही किन्तु साथ ही जिस लोकतंत्र को हमने उन्हें प्रदान किया है वह भी विनष्ट हो जायेगा।

श्रीमान, इस संविधान की यह कह कर निन्दा की गई है कि इसके द्वारा बहुत अधिक केन्द्रीकरण किया गया है, किन्तु मेरे विचार से यह आलोचना अनुचित है। मैं यह स्वीकार करता हूं कि जिस किसी उपबन्ध से केन्द्र को अधिक शक्ति प्राप्त हुई उससे मुझे हर्ष ही हुआ। इस सम्बन्ध में भी हम लोकतंत्र के नारे लगाते हैं; किन्तु मैं पूछता हूं कि पूर्ण रूप से विश्लेषण करने पर हमारे सामने लोकतंत्र का कौन-सा स्वरूप प्रकट होता है और उसका हम क्या अर्थ लगाते हैं? उससे अवश्य ही अधिक से अधिक लोगों का अधिक से अधिक कल्याण अभिप्रेत है। मुझे यह कहते हुए खेद हो रहा है किन्तु मैं बिना किसी पर आक्षेप किये हुए

[श्री फ्रैंक ऐंथनी]

यह कहूंगा कि प्रान्तीय प्रशासनों के सम्बन्ध में आखिर हमें प्रतिदिन कौन सी बातें ज्ञात हो रही हैं? क्या प्रतिदिन कुशासन के तथा लोकतंत्र के आधारभूत सिद्धान्तों के अतिक्रमण के नवीन उदाहरण नहीं मिल रहे हैं? सच पूछिए तो इस संक्रान्ति काल के लिये कम से कम मैं तो एकात्मक शासन-प्रणाली का पूर्ण रूप से समर्थन करता हूं। प्रान्तों का प्रशासन राज्यपाल अथवा राजप्रमुख कर सकते थे और उनकी सहायता स्थाई असैनिक सेवा के अधिकारी कर सकते थे। श्रीमान, मैं कम से कम इसका उल्लेख तो चाहता ही हूं कि मुझे इससे असन्तोष है कि शिक्षा, स्वास्थ्य तथा पुलिस के समान महत्वपूर्ण विषय पूर्णतया प्रान्तों के हाथ में दे दिये गये हैं। शिक्षा के सम्बन्ध में मुख्य अधिकार हमने प्रान्तीय सरकारों को दे दिया है। मुझे खेद है कि इस अधिकार को पाकर वे थोड़े समय में ही उन्मत्त हो गई हैं। मध्य प्रान्त में आखिर क्या हो रहा है? मैं यह निवेदन करता हूं कि मध्य प्रान्त ने अपनी शिक्षण-नीति से जानबूझ कर लोकतंत्र का हनन किया है और धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र सिद्धांन्तों का अतिक्रमण किया है। मध्य प्रान्त में जो अल्पसंख्यक वर्ग भाषा पर आधृत हैं उनकी, शिक्षा और भाषा की दृष्टि से तो मृत्यु ही हो जायेगी। इस प्रकार की बातें हो रही हैं। वहां भाषा पर आधृत अल्पसंख्यक वर्गों की कोई चिंता नहीं की जाती। एकाएक एक ऐसी भाषा-नीति का अनुसरण किया जाने लगा है जिससे न केवल मूलाधिकार-विषयक उपबन्धों का खण्डन होता है बल्कि असंहिष्णुता, वर्गयिता तथा जोर ज़बरदस्ती की भावना भी झलकती है। केवल यहीं इसका अन्त नहीं हो जाता। मुख्य अधिकार आपने प्रान्तों को ही दिया है और उसे पाकर वे उन्मत्त हो गये हैं। राष्ट्रीय प्रगति और देश के सबसे बड़े हितों की उन्हें कोई चिन्ता नहीं है। मेरा यह विश्वास है कि कुछ ही वर्षों में हमारे देश के नेता यह अनुभव करने लगेंगे कि शिक्षा के सम्बन्ध में प्रान्तों को पूर्ण अधिकार देकर हमने बहुत बड़ी गलती की है। आप देखेंगे कि देश की तुरन्त ही वही दशा हो जायेगी जो बालकान के देशों की हुई थी। आपने प्रान्तों को शक्ति दी है उससे वे देश को अनेक भाषा-भाषी प्रदेशों में विभाजित कर देंगे और इस प्रकार विभाजित करेंगे कि एक दूसरे का कोई सम्बन्ध नहीं रह जायेगा। इसका परिणाम यह होगा कि एक राष्ट्र की भावना मिटती जायेगी। मुझे इसकी बहुत आशंका है। जब तक निकट भविष्य में कोई प्रभावपूर्ण कार्यवाही न की जायेगी मेरी समझ में नहीं आता कि जो शक्ति होगी उसकी पूर्ति कैसे होगी।

समवर्ती सूची में मैं एक और विषय को रखना चाहता था। वह विषय स्वास्थ्य का विषय है। श्रीमान, मैं निवेदन करना चाहता हूं कि कुछ प्रान्तों में इस सम्बन्ध में ठीक कार्य हो रहा है। सौभाग्य से बंबई के कर्णधार खेर जी हैं। अच्छा यह होता कि देश में एकात्मक शासन स्थापित किया जाता और प्रान्तों से प्रतिष्ठित व्यक्ति केन्द्र में लाये जाते। जैसा कि मैं कह चुका हूं, हमने स्वास्थ्य का विषय

प्रान्तों को सौंप दिया है। राष्ट्र-निर्माण की दृष्टि से इस विषय का बहुत अधिक महत्व है किन्तु प्रान्त इस सम्बन्ध में अपनी क्षमता के अनुसार रुक रुक कर ही ढीले कदम उठायेंगे।

अन्त में पुलिस के सम्बन्ध में मैं यह निवेदन करता हूं कि यह विषय केन्द्र के ही अधिकार में ही होना चाहिये। बंबई के प्रान्त में पुलिस ने अच्छा नाम कमाया है। किन्तु हम सच्ची बात क्यों न कहें? विभिन्न प्रान्तों में पुलिस को कैसी ख्याति अथवा कुख्याति प्राप्त है? विभिन्न प्रान्तों में पुलिस-शासन के सम्बन्ध में जनसाधारण की क्या राय है? मैं जानता हूं कि उनकी क्या राय है और आप भी जानते हैं कि उनकी क्या राय है। बहुत से प्रान्तों में पुलिस बदनाम है। वे विधि और व्यवस्था के संरक्षक नहीं समझे जाते बल्कि भ्रष्टाचार और उत्पीड़न के पोषक समझे जाते हैं। मेरी यह प्रबल इच्छा थी कि पुलिस-प्रशासन का विषय केन्द्रीय सूची में रख दिया जाता।

क्या मैं एक शब्द निदेशक तत्वों के सम्बन्ध में भी कह सकता हूं? मुझे यह विदित है कि मेरे माननीय मित्र श्री खरे मेरे विचारों से सहमत नहीं होंगे और सम्भवत: ये विचार धर्म विरोधी तथा असंगत प्रतीत होंगे। मैं नशाबन्दी के विषय को निदेशक तत्वों के साथ नहीं रखना चाहता था। मैं पियक्कड़ों का अथवा नशे का पक्ष नहीं ले रहा हूं। इसके विपरीत मैं नशाबन्दी को एक उच्च आदर्श मानता हूं। किन्तु मुझे यह भय है कि चूंकि इसे निदेशक तत्वों के साथ रखा गया है। इसलिये इस सम्बन्ध में प्रान्तों को अधिकार प्राप्त हो जाता है और कुछ प्रान्त बिना वास्तविकता की ओर यथेष्ट ध्यान दिये हुए नशाबन्दी की प्रणाली को शीघ्रता से व्यवहार में लाना चाहेंगे। मैं उन लोगों में हूं जो इस प्रश्न पर तर्क और मनोविज्ञान की दृष्टि से विचार करते हैं। मैं नशाबन्दी के प्रश्न को बहुत कुछ एक मनोवैज्ञानिक प्रश्न समझता हूं। मेरा विश्वास है कि मनुष्य प्रकृति सर्वत्र समान है और कुछ आधारभूत बातों के सम्बन्ध में भारतीय यूरोपियनों से भिन्न नहीं है। मेरा विश्वास है कि इस सम्बन्ध में जो विधियां बनाई गई हैं उनसे लोग बहुत कुछ असंतुष्ट ही हैं और उनके सम्बन्ध में लोगों यह भावना है कि उनसे उनके वैयक्तिक जीवन में, तथा उनके वैयक्तिक स्वातंत्र्य में हस्तक्षेप हुआ है। मैं अपने माननीय मित्र श्री खरे से यह पूछना चाहता था कि क्या यह सम्भव है कि नैतिकता के सम्बन्ध में विधि बनाई जा सके? क्या विधि द्वारा नैतिकता का उदय हो सकता है? यह सम्भव नहीं है और कभी सम्भव नहीं रहा है। मैं इसे स्वीकार करता हूं कि यदि आप नशाबन्दी के कार्यक्रम को धीरे-धीरे व्यवहार में लायें और उसके साथ-साथ सामाजिक सुधार भी करते रहें तो आप कुछ लोगों को नशे से बचा सकते हैं। जब तक आप शहरों में मज़दूरों के चालों को बनाये रखते हैं और उन्हें स्वस्थ्य जीवन व्यतीत करने के थोड़े बहुत साधन भी प्रदान नहीं करते तब तक विधि-निर्माण द्वारा उन्हें नैतिक बनाने और उन की नशे की आदत छुड़ाने से क्या लाभ होगा? जहां तक नशेबन्दी के आदर्श का सम्बन्ध है,

[श्री फ्रैंक ऐंथनी]

मुझे उसके विरुद्ध कुछ भी नहीं कहना है। मैं जिस चीज़ के विरुद्ध हूं वह यह है: हमारे प्रधान मंत्री हमसे यह कहते रहते हैं कि पहले जो कार्य करने चाहिये उन्हें पहले करना चाहिये किन्तु दुर्भाग्य से हमारी यह आदत हो गई है कि जिन कार्यों को हमें अन्त में करना चाहिये उन्हें हम पहले करते हैं। किसी भी सरकार को पहले कौन से कार्य करने चाहिये? राष्ट्र-निर्माण के कौन से सबसे महत्वपूर्ण कार्य हैं जिन की ओर हमे पहले ध्यान देना चाहिये। निस्सन्देह हमें स्वास्थ्य और शिक्षा की ओर ही सबसे पहले ध्यान देना चाहिये। किन्तु आज अधिकांश प्रान्तीय सरकारें इस सम्बन्ध में क्या कर रही हैं? जिन राष्ट्र-निर्माण के कार्यों को उन्हें सर्वप्रथम आरम्भ करना चाहिये था उनके सम्बन्ध में वे एक ओर तो यह कहती हैं कि उनके पास धन नहीं है और दूसरी ओर इन मृगमरीचिकाओं को आदर्श मानकर इनके पीछे दौड़ती हैं। हम इस प्रकार करोड़ों रुपया नष्ट कर रहे हैं। नशाबन्दी के समान कार्यों को एकाएक आरम्भ करने के सम्बन्ध में मेरी यही आपत्ति है। सिद्धान्त: मैं उसके विरुद्ध नहीं हूं—वह एक उत्तम आदर्श है और यदि हम उसे प्राप्त कर सकें तो अनेक परिवार एक अभिशाप से मुक्त हो जायेंगे।

निदेशक तत्वों के सम्बन्ध में मैं गो-वध-विषयक उपबन्ध को उठाता हूं। मैं जानता हूं कि इस विषय की चर्चा करना खतरे से खाली नहीं है किन्तु मैं इस सम्बन्ध में अपना मत स्पष्ट कर देना चाहता हूं। निदेशक तत्वों के सम्बन्ध में मुझे आपत्ति केवल इस पर है कि गौ-वध पर प्रतिषेध विषयक उपबन्ध को चालबाजी से इस अध्याय में प्रविष्ट किया गया है। वह पहले नहीं रखा गया था। मैं यह कहूंगा कि वे धर्मांध लोग तथा उग्र मतावलम्बी, जो इस उपबन्ध को प्रत्यक्ष रूप से नहीं रख सके, वे इसे अप्रत्यक्ष रूप से प्रविष्ट करने में सफल हो गये हैं। श्रीमान, मैं गोमांसाहारी नहीं हूं और मैं गोमांसाहारियों की ओर से तर्क नहीं उपस्थित कर रहा हूं। मैं कहता हूं कि गौ-वध का प्रतिषेध करिये किन्तु ईमानदारी से करिये और ऐसे उपायों का आश्रय न लीजिये जिनके आधार पर यह आरोप लगाया जा सके कि आप चालबाजी कर रहे हैं। मैं अपने हिन्दू मित्रों से पूछता हूं कि क्या गौ-वध से आपकी धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचती है।

***श्री के. हनुमन्थय्या** (मैसूर राज्य): जी हां, पहुंचती है।

***श्री फ्रैंक ऐंथनी:** अच्छी बात है, मुझे इसकी प्रसन्नता है कि आपने यह कह दिया है। यदि आप यह पहले कहते तो मैं इस आशय का एक प्रस्ताव उपस्थित करता कि मूलाधिकारों में गो-वध प्रतिषेध-विषयक एक उपबन्ध रख दिया जाये और गो-वध को एक दंडनीय अपराध घोषित कर दिया जाये। किन्तु लोग इसके लिये तैयार नहीं थे। इस उपबन्ध को अब अप्रत्यक्ष रूप से क्यों रखा जा रहा है? हो सकता है कि आपकी धार्मिक भावनाओं को ठेस लगे किन्तु इसके

साथ ही मैं यह भी आशा करता हूं कि मेरी धार्मिक भावनाओं का भी आदर किया जाये। मैं आपकी भावनाओं का आदर करने के लिये तैयार हूं। जैसा कि मैं कह चुका हूं इसे बाद में सोच विचार कर इस प्रकार निदेशक तत्वों के अध्याय में प्रविष्ट करने का प्रयास क्यों किया जा रहा है? देखिये तो इसे किस प्रकार प्रविष्ट किया गया है। तत्विषयक खण्ड में कहा गया है:

"भारत के ढोरों के, दुधारू तथा वाहक ढोरों के परिरक्षण के लिये ढोरों के वध का प्रतिषेध किया जा सकता है।"

***श्री के. हनुमन्थय्या:** श्रीमान, मुझे एक औचित्य प्रश्न करना है। क्या यह उचित है कि माननीय सदस्य यह कहें कि यह कुछ उद्देश्यों से और चालबाजी से किया गया है? मैं आपका ध्यान इस ओर आकर्षित करता हूं। माननीय सदस्य महोदय कह सकते हैं कि हमने एक उपबन्ध चालबाजी से रखा है। वे कहते हैं कि जिस प्रकार हमने उसे निदेशक तत्वों के अध्याय में रखा है इससे प्रमाणित होता है कि हमने उसे कुछ उद्देश्यों से रखा है। श्रीमान मैं चाहता हूं कि इसके औचित्य पर आप निर्णय करें।

***श्री फ्रैंक एंथनी:** श्रीमान, मैंने जो कुछ कहा है वह यदि किसी प्रकार भी संसदोचित भाषा नहीं है तो मैं आपसे और सभा से क्षमा मांगता हूं। मैंने यह नहीं कहा कि यह किसी उद्देश्य से किया गया है। मैं केवल वस्तु-स्थिति का वर्णन कर रहा था। जैसाकि मैं कह चुका हूं, जो कुछ किया गया है उसके आधार पर यह आरोप लगाया जा सकता है कि उद्देश्य यह था कि इस उपबन्ध को अप्रत्यक्ष रूप से रखा जाये मैं "चालबाजी से" रखा जाये नहीं कहूंगा। मैं यह कह चुका हूं, और इसे फिर दुहराता हूं कि यदि इस प्रश्न से आपकी भावनाओं को ठेस लगने की सम्भावना थी, और मुझे यह ज्ञात होता, तो मैं सबसे पहले यह सुझाव रखता कि इस विषय को मूलाधिकारों का अंग बना देना चाहये। इसे केवल इस देश के ढोरों के परिरक्षण विषयक उपबन्ध का अंग बनाया गया है। यह एक बच्चा भी जानता है कि अन्य देशों में जनसंख्या के अनुपात से जितने ढोर हैं उससे कहीं अधिक ढोर इस देश में है। प्रत्येक होशियार बच्चा यह भी बता सकता है कि इतने अधिक ढोर होने पर भी हमारे देश में फी जानवर की दूध देने की अथवा भार ढोहने की शक्ति संसार के अन्य देशों के जानवरों से बहुत कम है। ढोरों के परिरक्षण तथा देश के हितसाधन के लिये ढोर के वध का प्रतिषेध करने की आवश्यकता नहीं थी बल्कि वास्तव में इस देश के आधे से अधिक पशुओं का वध करने की आवश्यकता थी। इसी कारण मैं यह निवेदन कर रहा हूं कि इस उपबन्ध को इस प्रकार नहीं रखना चाहिये था। मैं इस ओर केवल आपका ध्यान आकृष्ट कर देना चाहता हूं।

अन्त में मैं एक शब्द अनुच्छेद 21 के सम्बन्ध में कहना चाहता हूं। एक वकील होने के नाते मैं यह स्पष्ट शब्दों में कहना चाहता हूं कि मुझे अनुच्छेद

[श्री फ्रैंक एंथनी]

21 के कारण कुछ निराशा हुई है। उसमें कहा गया है कि किसी व्यक्ति को अपने प्राण अथवा दैहिक स्वाधीनता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर अन्य प्रकार वंचित न किया जायेगा। यदि अनुच्छेद 21 इसी रूप में रहा तो यदि कार्यपालिका चाहेगी तो उसका दुरूपयोग कर सकेगी और पूरी शक्ति स्वयं लेकर लोगों का उत्पीड़न कर सकेगी। कार्यपालिका इस अनुच्छेद का आश्रय लेकर विधि के शासन को मिटा सकेगी और नागरिकों को न्याय तथा न्याय-शास्त्र के साधारण सिद्धान्तों से वंचित कर सकेगी। किन्तु मैंने इस अनुच्छेद का विरोध इस कारण नहीं किया। हम एक ऐसे अधिकार के न्यूनन के लिये, जिसे कि मैं एक मूल मानुषिक अधिकार समझता हूं, इसलिये तैयार हो गये कि इस समय संक्रान्ति काल है और हो सकता है कि हमें सरकारों और प्रशासनों को अत्यधिक शक्तियां देनी पड़ें। हम ये शक्तियां इस लिये नहीं देने जा रहे हैं कि उनका दुरुपयोग किया जायेगा बल्कि इस लिये देने जा रहे हैं कि अव्यवस्था तथा अराजकता न फैले। यह चेतावनी देते हुए मैं आशा करता हूं कि प्रान्तीय सरकारें अथवा केन्द्रीय सरकार, अनुच्छेद 21 के अधीन मिली हुई अत्यधिक शक्तियों का दुरुपयोग नहीं करेंगी। उन्हें केवल विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया का अनुसरण करना है और तदुपरान्त वे उनका दुरुपयोग भी कर सकती हैं। हमें आशा है कि प्रान्तीय सरकारें, अथवा केन्द्रीय सरकार, विधि द्वारा जिस प्रक्रिया को स्थापित करेगी उसके द्वारा प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्त का निराकरण नहीं होगा।

मैं यह कह कर समाप्त करना चाहता हूं। मेरा विश्वास है कि हमने एक बहुत कुछ सुन्दर संविधान का ही निर्माण किया है। उसमें अवश्य ही दोष होंगे क्योंकि इसे दोषपूर्ण मनुष्यों ने बनाया है। किन्तु मेरा विश्वास है कि हमने अपना कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न किया है। इसे व्यवहार में लाने के लिये न केवल हमारी सद्भावना की आवश्यकता है बल्कि हमारे आशीर्वाद की भी आवश्यकता है। हमें यह न समझना चाहिये कि हमने एक महत्वपूर्ण तथा वृहद ग्रंथ को तैयार करके अथवा अल्पसंख्यकों को विस्तृत प्रत्याभूतियां देकर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर दी है। अन्त में यह संविधान इसी कसौटी पर कसा जायेगा कि इसके उपबन्धों को किस उद्देश्य से प्रभाव में लाया जाता है और किस भावना से व्यवहार में लाया जाता है।

***डॉ. बी. पट्टाभी सीतारमय्या** (मद्रास: जनरल): अध्यक्ष महोदय, जो व्यक्ति बहुत बातूनी होता है उसके लिये सीमित समय में अपनी बात समाप्त करना बहुत कठिन हो जाता है। विशेषतया जब कि यह सभा अपना विचार-विमर्श समाप्त करने वाली ही हो तो यह कठिनाई और भी बढ़ जाती है चूंकि हम अब विचार विमर्श करने वाले हैं इस लिये अब बोलने में मैं कुछ घबराहट का अनुभव कर रहा हूं, मुख्यत: इस लिये कि मुझे थोड़े ही समय में अपना भाषण समाप्त कर देना है। मैं सारी स्थिति का सिंहावलोकन करना चाहता था किन्तु इसके लिये अब समय नहीं है। आपको स्मरण होगा कि एक समय हम किस प्रकार की अटपटी बातें करते थे। 1927 में हम "संविधान सभा" के सम्बन्ध में स्पष्ट भाषा में चर्चा

करते हुए हिचकते थे। 1934 में द्वितीय नमक सत्याग्रह आन्दोलन के विफल होने पर हमने यह चर्चा फिर आरम्भ की थी। यह उस समय हमने अनुभव किया था कि विवश होकर हमें वापस लौटना पड़ रहा है। अन्त में हमें एकाएक इस संविधान सभा को अनेक वर्गों तथा समूहों के साथ अपनाना पड़ा। बहुत मूल्य चुका कर हमने इन वर्गों और समूहों से अपना पीछा छुड़ाया। जब 9 दिसम्बर 1946 को हमने अपना विचार-विमर्श आरम्भ किया तो हम चाहते थे कि तुरन्त ही उसे समाप्त कर दें और वास्तव में हममें से कुछ लोग तो यह समझते थे कि छः महीने में ही हम अपना कार्य समाप्त कर देंगे। यदि 1946 में हम अपने संविधान को समाप्त करते तो वह एक गड़बड़झाला ही होता और यदि 1948 में समाप्त करते तो वह एक गोरखधंधा ही होता। जितना भी विलम्ब हुआ है उसके फलस्वरूप हमने सभी बातों पर यथोचित रूप से विचार किया और जैसे जैसे राजनैतिक घटनाएं घटित हुई वैसे वैसे हमने प्रशासन में भी परितर्वन किये। यदि हम 15 अगस्त 1947 के पूर्व अपना संविधान समाप्त कर देते तो उसका स्वरूप कैसा होता? वह उसके वर्तमान स्वरूप से बिल्कुल भिन्न होता। हमें अंग्रेज़ों से जो परम्परा प्राप्त हुई है उसे भी इस विलम्ब से हम हम अपनी इच्छा के अनुरूप बना सके हैं। कई लोगों का यह विचार है कि यह संविधान 1935 के अधिनियम की केवल नकल ही है और वास्तव में निन्दनीय ढंग से उसकी नकल की गई है, और उनका यह भी विचार है कि यह संविधान क्रान्किारी नहीं है और जहां हमें वास्तव में मौलिक रचना करनी चाहिये थी वहां हमने वास्तव में केवल नकल ही की है। ये बातें आधी सच हैं और आधी झूठ। "क्रांतिकारी दस्तावेज"–इस पदावलि में विशेषण और विशेष्य में विरोध है। क्रान्ति दस्तावेजों का सृजन नहीं करती और न दस्तावेज ही क्रांति का सृजन करते हैं। हमने 1935 के अधिनियम की इस कारण नकल की है कि सौभाग्य से, अथवा दुर्भाग्य से, हम किसी रक्तपूर्ण क्रान्ति के फलस्वरूप अपने बन्धनों से मुक्त नहीं हुए हैं। वास्तव में नौकरशाही और दासत्व की अवस्था से धीरे-धीरे उठाकर हमने गणराज्य और सहयोग-मूलक राज्य की अवस्था प्राप्त की है। हमें कभी सैनिक विधि का सामना नहीं करना पड़ा, हमें लोगों को कभी गलियों में अथवा, पेड़ों से लटका कर, फांसी नहीं देनी पड़ी, हमें अपराध सिद्ध लोगों को गोली से नहीं उड़ाना पड़ा और न हमें कभी अपना अथवा अपने शत्रुओं का एक बूंद भी रक्त बहाना पड़ा। इसी कारण सामयिक उत्तेजना से प्रभावित न होकर हमने एक प्रकार के शांतिपूर्ण असैनिक शासन का परित्याग करके एक दूसरे प्रकार के असैनिक शासन को अपनाया जो लोकप्रिय शासन है और हमारा अपना शासन है। जो विलम्ब हुआ है उसके फलस्वरूप हमारे शासक 562 छिन्न-भिन्न देशी राज्यों को एक सूत्र में बांध सके हैं। इस प्रकार संविधान के विकास के साथ-साथ अथवा संविधान को विकसित करने के प्रयत्नों के साथ-साथ, अंग्रेज़ों द्वारा अनेकों भागों में विभाजित इस देश में एकता स्थापित करने के लिये भी प्रशासन-सम्बन्धी कार्यवाही की गई है।

[डॉ. बी. पट्टाभी सीतारम्य्या]

आखिर हमें क्या प्राप्त हुआ? हमें एक ऐसा देश प्राप्त हुआ जो प्रान्तों तथा राज्यों में, समुदायों तथा वर्गों में, शहरी तथा देहाती क्षेत्रों में और अनुसूचित जातियों तथा आदिम-जातियों में विभाजित था इन सबको एक सूत्र में बांध दिया गया है। प्रशासन सुविधा के लिये प्रान्तों का होना आवश्यक है किन्तु देशी राज्यों सरकारों का स्वरूप प्रान्तों की सरकारों के अनुरूप ही कर दिया गया है इस प्रकार देश में सामंजस्य उत्पन्न हो सका है और ही केन्द्रीय सरकार तथा एक ही संघीय ढांचे का निर्माण हो सका है इसके अतिरिक्त 1906 के पश्चात् अंग्रेजों ने अत्यन्त प्रयत्न करके तथा विभिन्न समुदायों में फूट डालकर और पहले हिन्दू मुसलमानों को, फिर सिख और हिन्दुओं को तथा हरिजन और हिन्दुओं को एक-दूसरे से पृथक करके जिन पृथक् निर्वाचन क्षेत्रों की स्थापना की थी उन्हें हम समाप्त कर सके हैं। अब सभी निर्वाचकों का एक ही समुदाय बना दिया गया है। यह कोई साधारण काम नहीं हुआ है।

इसके अतिरिक्त अस्पृश्यता का भी अन्त कर दिया गया है जिसके कारण हिन्दुओं का एक वर्ग अन्य लोगों से बिल्कुल पृथक् रहा है। महात्मा जी ने इस उद्देश्य से 20 सितम्बर 1932 से आमरण अनशन आरम्भ किया था और छः ही दिन में एक चमत्कार कर दिखाया था। अब हमने अस्पृश्यता की संज्ञा अथवा शब्द को ही नहीं और इसमें सन्निहित भावना को ही नहीं मिटाया है बल्कि विधि द्वारा भी यह उपबन्धित किया है कि भविष्य में कोई व्यक्ति किसी से अछूत नहीं कह सकेगा और यदि कोई व्यक्ति कहेगा तो उसे जुर्माने और कैद की सजा दी जा सकेगी। हमने अपने सीमावर्ती प्रदेशों में, विशेषतया उत्तर-पश्चिम तथा उत्तर-पूर्व में आदिम-जातियों के लिये प्रगतिशील सरकारों की तथा उनके गणराज्यों की स्थापना की है। इस प्रकार अपने संविधान का निर्माण करते हुए हम उन सिद्धांतों को कार्य रूप में लाये हैं जिनका समर्थन महात्मा गांधी करते रहे हैं। आपको स्मरण होगा कि 1921 में अपने दौरे में वे प्रत्येक गांव में केवल तीन वाक्य कहते थे और वहां से तीन से लेकर तीस हजार रुपये तक इकट्ठा कर ले जाते थे। ये वाक्य खद्दर, अस्पृश्यता तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता के सम्बन्ध में थे। खद्दर को हमने ग्राम-उद्योगों के अग्रदूत के रूप में स्वीकार किया है और हमने इस पर जोर दिया है कि देश की उन्नति के लिये घरलू उद्योग-धंधों को बढ़ावा देना चाहिये। अस्पृश्यता को हमने विधि द्वारा समाप्त कर दिया है। संयुक्त, निर्वाचन क्षेत्र स्थापित करके हम हिन्दुओं और मुसलमानों में एकता भी स्थापित कर सके हैं।

***एक माननीय सदस्यः** नशाबन्दी?

***डॉ. बी. पट्टाभी सीतारमय्याः** नशाबन्दी को व्यवहार में लाने का कार्य प्रान्तों को सौंपा गया है। अपने संविधान में हमने उसे निदेशक तत्वों के रूप में रखा है। यदि इसे व्यवहार में लाया गया तो इससे बहुत बड़ा नैतिक सुधार होगा। यद्यपि

प्रान्तीय सरकारों की कुछ आय की हानि होगी किन्तु यदि नैतिक दृष्टि से देखा जाय तो राष्ट्र को भविष्य में इससे बड़ा लाभ होगा। (*हर्षध्वनि*)

अन्त में मैं यह कहूंगा कि हमने मताधिकार को अधिक विस्तृत बनाया है। जिस समय अंग्रेज इस देश को छोड़कर गये उस समय केवल साढ़े तीन करोड़ मतदाता थे। अगले वर्ष मतदाताओं की सूची में लगभग साढ़े सत्रह करोड़ मतदाताओं के नामों का उल्लेख होगा।

इस प्रकार हमने एक पराधीन देश को एक सहयोग-मूलक राज्य में परिणत कर दिया है। यह कहने का साहस किसको है कि हमने जो कुछ किया है वह हमारे देश को शोभा नहीं देता? यह सब कार्य हमने तीन ही वर्ष में कर दिखाया है। कनाडा के स्वतन्त्र होने पर वहां के लोग 1842 में संविधान-निर्माण के लिए एकत्रित हुए थे। उस समय लार्ड हाई कमिश्नर लार्ड डरहम को लन्दन टाइम्स ने लार्ड हाई सेडिशनर कहा था। कनाडा का संविधान 1867 में, अर्थात् 25 वर्ष पश्चात् बन कर तैयार हुआ। हमने तो इस संविधान को केवल तीन वर्ष में ही तैयार कर दिया है।

संविधान के सम्बन्ध में मैं इस सभा का ध्यान केवल दो बातों की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं जिनमें से एक मूलाधिकारों के सम्बन्ध में है और दूसरी नियंत्रक महालेखा परीक्षक के सम्बन्ध में है।

मूलाधिकार विषयक अध्याय में मेरी बहुत दिलचस्पी है क्योंकि उसके लिये एक समिति ने मुसलीपट्टम में मेरे घर पर नींव डाली थी। यह समिति कराची में अप्रैल 1931 में नियुक्त की गई थी। उस समय हम केवल मूलाधिकारों की ही नहीं बल्कि मूल कर्तव्यों की भी चर्चा करते थे। किन्तु उस समय यह आशा नहीं की जाती थी कि इनका उल्लेख किया जा सकेगा क्योंकि प्रत्येक अधिकार में कर्तव्य भी सन्निहित है। मेरा जो अधिकार है वह मेरे पड़ोसी का मेरे प्रति कर्तव्य है। पत्नी को पति के समान ही अधिकार है तो पति का यह कर्तव्य है कि वह पत्नी के प्रति समता का व्यवहार करे। यदि लोगों को सरकार के प्रति विद्रोह करने का अधिकार है तो सरकार को भी विद्रोह के लिये लोगों को फांसी पर चढ़ाने के कर्तव्य का पालन करना होगा। अधिकार और कर्तव्य एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं। ये परस्पर विरोधी होते हैं, अर्थात् यूं कहिये कि ये एक ही सिक्के के ऊपर के और नीचे के हिस्सों के समान हैं। इस सभा के मेरे कुछ मित्रों ने यह आपत्ति की है कि कर्तव्यों का उल्लेख नहीं किया गया है किन्तु यह निराधार है क्योंकि प्रत्येक अधिकार में कर्तव्य सन्निहित होता है।

दूसरी बात जिसके सम्बन्ध में कुछ शब्द कहना चाहता हूं, नियंत्रक-महालेखा परीक्षक के सम्बन्ध में है। नियंत्रक-महालेखा परीक्षक को एक प्रतिष्ठित पद प्रदान करके हमने एक बड़ा कार्य किया है। आपका संविधान चाहे कितना ही उत्कृष्ट

[डॉ. बी. पट्टाभी सीतारम्य्या]

क्यों न हो और भविष्य में सुचारू रूप से कार्य संचालन के लिये उसमें कितने ही रक्षण क्यों न रखे गये हों आखिर सब कुछ धन पर ही निर्भर करेगा। हमें लगभग तीन सौ सत्तर करोड़ रुपये का केन्द्र में और लगभग इतने ही रुपये का प्रान्तों में लेखा जोखा रखना होगा। यदि इस धन को यथोचित रूप से व्यय नहीं किया गया और यदि लोग मुझ जैसे व्यक्तियों की, जो रुपये आने पाई गिनते रहते हैं और जिनके लिये प्रत्येक रुपये के 16 आने होते हैं और प्रत्येक आने की बारह पाईयां होती हैं, मजाक उड़ाते रहे तो हमें किसी प्रकार का शासन नहीं दिखाई देगा। बल्कि दिखाई देगी अव्यवस्था, अराजकता, लूट और डकैती। इस लेखे-जोखे पर नियंत्रण कौन रखेगा? क्या मन्त्रिमंडल का नियुक्त किया हुआ कोई व्यक्ति उस पर नियंत्रण रखेगा? जी नहीं। नियंत्रक महा-लेखापरीक्षक को उतना ही सर्वोच्च अधिकार सम्पन्न तथा स्वतन्त्र होना चाहिये जितने स्वतन्त्र उच्चतम-न्यायालय के न्यायाधीशों को बनाया गया है और वास्तव में उससे भी अधिक स्वतन्त्र होना चाहिये। वह केवल महालेखापरीक्षक ही नहीं होगा बल्कि वह एक न्यायप्राधिकारी भी होगा। उसे न्याय के विषय का ज्ञान होगा और वह न्याय करेगा। वह यह बतायेगा कि वह किस बात को ठीक समझता है और वास्तव में कार्यपालिका ने क्या किया है। कभी तो उसे कार्यपालिका की आलोचना करनी होगी और इतनी कड़ी आलोचना करनी होगी। कि वह लोगों की नजर से गिर जाये। इसलिये ऐसे उपबन्ध न रखने चाहिये कि वह सरकार के अथवा किसी दल के अथवा कोषाधिकारियों के अथवा वित्त मंत्रालय के क्रोध का शिकार हो जाये। 1806 तक इंग्लिस्तान में महा-लेखापरीक्षक एक स्वतन्त्र व्यक्ति नहीं था और इस देश में 1921 तक हमने इस पर विचार तक नहीं किया था। कि महालेखा-परीक्षक एक स्वतन्त्र व्यक्ति होना चाहिये। हमने इस अधिकारी की स्वतन्त्रता के लिये धीरे-धीरे कदम उठाये और आज हमने उसे पूर्ण रूप से स्वतन्त्र कर दिया है। अब वह स्वविवेक से निर्णय कर सकेगा और उसे अन्य लोगों की प्रसन्नता अथवा अप्रसन्नता की चिन्ता नहीं होगी। अभी इस सम्बन्ध में पूरी कार्यवाही नहीं हुई है। इस देश में अभी हमें लेखा परीक्षक अधिनियम पारित करना है। कई अन्य स्वाधीन देशों को भी इस अधिनियम को पारित करना है। जब यह पारित हो जाएगा तो महालेखा-परीक्षक तथा नियंत्रक भारत के वित्त का सर्वोच्च अधिकारी हो जायेगा। वास्तव में तभी हम सच्चे अर्थ में स्वराज प्राप्त करेंगे।

अन्त में मैं आपसे पूछता हूं कि आखिर संविधान का क्या अर्थ है? वह राजनीति का व्याकरण है और राजनैतिक नाविक के लिए एक कुतुबनुमा है। वह चाहे कितना ही अच्छा क्यों न हो किन्तु स्वयं वह प्राणशून्य और चेतनाशून्य है और स्वयं किसी प्रकार का कार्य करने में असमर्थ है वह हमारे लिये उतना ही उपयोगी

होगा जितना उपयोगी हम उसे बना सकते हैं। वह विपुल शक्ति का भंडार है किन्तु हम उसका जितना उपयोग करना चाहेंगे उतना ही उपयोग कर सकेंगे। सब कुछ इस पर निर्भर करेगा कि हम उसके शब्दों को ही देखते हैं और उसमें सन्निहित भावना की उपेक्षा करते हैं अथवा हम उसके शब्दों तथा उसमें सन्निहित भावना की ओर भी ध्यान देते हैं। शब्दकोष में सबके लिये समान शब्द होते हैं किन्तु उन्हें प्रयोग करके विभिन्न लेखक विभिन्न शैलियों का सृजन करते हैं। स्वर और ध्वनियां सभी के लिये समान हैं किन्तु उनसे विभिन्न गायक विभिन्न गीतों की रचना करते हैं। रंग और तूलिकायें सबके लिए समान हैं किन्तु उनसे चित्रकार विभिन्न चित्रों को चित्रित करते हैं। इसी प्रकार संविधान के सम्बन्ध में भी यह कहा जा सकता है कि सब कुछ इस पर निर्भर करता है कि हम उसे किस प्रकार व्यवहार में लाते हैं। मैं केवल संयुक्त निर्वाचन-प्रणाली का उदाहरण दूंगा। हमने संयुक्त निर्वाचक-मंडल स्थापित किये हैं। क्या वास्तव में हमने अपने कर्तव्य का पालन किया है? क्या हम निर्वाचकों को मनमाने ढंग से निर्णय करने देंगे? इस देश में मुसलमानों की संख्या लगभग तीन करोड़ पचास लाख है, अर्थात् वे कुल जनसंख्या के आठ या सात प्रतिशत से भी कम हैं। संयुक्त निर्वाचन-प्रणाली के अधीन क्या वे अपनी ही शक्ति से और बिना हमारे सहयोग के एक जगह भी प्राप्त कर सकेंगे। हमने एक ऐसा समझौता किया है जिस पर हमें टिके रहना है। उसके फलस्वरूप हम पर बहुत बड़ी जिम्मेदारी आ जाती है क्योंकि हमने उनसे कहा है कि वे रक्षणों की, अथवा पृथक् निर्वाचन-क्षेत्रों की, मांग न करें। संयुक्त निर्वाचन-प्रणाली के अधीन हमें मुसलमानों के कम से कम उतने प्रतिनिधि तो निर्वाचित करने ही चाहिये जितने पृथक निर्वाचन-प्रणाली के अधीन निर्वाचित होते। यही भारतीय ईसाईयों तथा अन्य लोगों के सम्बन्ध में भी कहा जा सकता है। यह मार्ग वास्तव में हमारी महिलाओं ने प्रशस्त किया है। जो महिलायें प्रान्तीय अनुकरणीय संविधान समिति में, अथवा केन्द्रीय संविधान-समिति में थीं उन्होंने कहा कि महिलाओं के लिये न तो पृथक् निर्वाचन-क्षेत्र होने चाहिये और न किसी प्रकार के रक्षण रखे जाने चाहिये। इसमें कोई संदेह नहीं कि वर्तमान व्यवस्था से उन्हें अधिक लाभ होगा। किन्तु उस समय यह कहने के लिए साहस तथा दूरदर्शिता की आवश्यकता थी। उन्होंने मुसलमानों को भी रास्ता दिखाया। ईसाई तो सदा से ही रक्षणों तथा पृथक् निर्वाचन-क्षेत्रों का विरोध करते रहे हैं। किन्तु उन्हें एक प्रकार से बिल्कुल पृथक् कर दिया गया था। सभी निर्वाचक-मंडल बिल्कुल पृथक् रखे गये थे और उनका एक-दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं था, यहां तक उनके मत भी बिल्कुल पृथक् थे। किसी एक निर्वाचक-मंडल का व्यक्ति किसी अन्य निर्वाचक-मंडल में जाकर मत नहीं दे सकता था।

यह बहुसंख्यक समुदाय के लोगों का कर्तव्य है कि वे सज्जनों के बीच किये गये इस समझौते के प्रत्येक शब्द का तथा इसमें सन्निहित भावना का आदर करें और अपने मित्रों को जितनी जगहें उन्हें अपनी जसंख्या के आधार पर मिलनी चाहियें उनसे अधिक जगहें ही प्राप्त करायें। यदि हम यह न कर सकें तो हम

[डॉ. बी. पट्टाभी सीतारम्य्या]

यह प्रमाणित करेंगे कि उन्होंने जो बहुत बड़ी रियायत की है उसके योग्य हम नहीं हैं।

इसके अतिरिक्त अहिंसा का प्रश्न भी है। क्या हमने गांधी जी के उपदेशों का अनुकरण किया है? जी हां, हमने किया है। हमने अन्त तक उनकी इच्छाओं को पूरा किया है। यदि गांधी जी की इच्छा कभी पूरी नहीं हुई तो उनके जीवन काल में ही पूरी नहीं हुई। उन्होंने देश विभाजन का विरोध किया था किन्तु अन्ततोगत्वा उन्हें उसे स्वीकार करना पड़ा। इस प्रकार अंग्रेजों पर चतुर्मुखी आक्रमण के सिद्धांत और देश के पुनर्निर्माण के सिद्धांतों के समान आधारभूत सिद्धांतों का हमने अपने संविधान में समावेश किया है। इस प्रकार बिना किसी संकोच के हम यह कह सकते हैं कि हमने उनकी इच्छाओं को पूरा किया है।

जहां तक अहिंसा का सम्बन्ध है, वह कोई ऐसा सिद्धान्त नहीं है जिसका कोई अहिंसा प्रिय राज्य विधियों में समावेश कर सके। वह एक दृष्टिकोण है, एक मार्ग हैं वह कोई लक्ष्य नहीं है। अहिंसा की एक कार्य प्रणाली है और वह स्वयं कोई लक्ष्य नहीं है। इसलिए जब तक हम अहिंसा के मार्ग पर चलते रहेंगे हमारे प्रयत्न अवश्य ही सफल होंगे। इस सम्बन्ध में मैं केवल यह निवेदन करना चाहता हूं कि जब हमारे प्रधान मंत्री हाल में अमरीका गये थे तो उन्हें इस युग का एक महापुरुष समझा गया और सम्भवत: विश्व राज्य का प्रथम प्रधान मंत्री भी समझा गया और उन्हें हार पहनाये गए। वे पाश्चात्य देशों के लोगों को हमारे देश के दर्शन से प्रभावित कर सके हैं। इसमें संदेह नहीं कि हम अहिंसा की भावना से ओत-प्रोत हैं भले ही हम पुलिस और सेना का उपयोग करते हैं और कुछ ऐसे युद्धों के लिए भी तैयार रहते हैं जिनमें हमारे संलग्न होने की संभावना होती है।

अब हम सब कुछ कह चुके हैं और हमें यह अनुभव करना चाहिये कि हम उन छ: व्यक्तियों के कितने आभारी हैं जिन्होंने इस संविधान का निर्माण किया है और इसे एक स्वरूप प्रदान किया है। हमारे मित्र डॉ. अम्बेडकर चले गये हैं अन्यथा मैं उनसे कहता कि इस महान कार्य को सम्पन्न करने में उन्होंने विशाल बुद्धि का परिचय दिया है। अपने अदम्य बुद्धि बल से उन्होंने सभी कठिनाइयों को दूर कर दिया है। वे जिस बात को ठीक समझते थे उस पर अडिग रहे और उन्हें कभी परिणामों का ध्यान तक नहीं आया।

हमारे बीच में सर अल्लादी भी थे जिनकी गहन विद्वत्ता तथा संविधानिक विधि के विशाल ज्ञान से हमने लाभ उठाया। इस संविधान के निर्माण में उन्होंने बहुत योग दिया है। यदि वे इस संविधान के विषय में एक भाष्य लिख दें तो उनका कार्य सम्पूर्ण हो जायेगा। श्री सन्तानम ने उनसे यही प्रार्थना की है। मुझे आशा है कि वे इस कार्य को पूरा करेंगे।

इनके अतिरिक्त हमारे बीच में सुशील और शान्त-स्वभाव श्री गोपालास्वामी आयंगर भी रहे हैं, जो यथोचित अवसर पर ऊंचे से ऊंचा तर्क उपस्थित करते रहे हैं, जो सदा यथार्थवाद और आदर्शवाद का सुन्दर समन्वय रहा है साथ ही वे प्रत्येक कठिन समस्या को सहिष्णुता तथा उदारता से हल करते रहे हैं।

हमें श्री मुंशी की प्रतिवादिता तथा ग्रहणशीलता का भी परिचय मिला। उनकी कुशाग्र बुद्धि तथा उपस्थिति से और विभिन्न विषयों के विस्तृत ज्ञान से हमें बहुत सहायता मिली।

श्री माधव राव इस समय यहां उपस्थित नहीं हैं। वे मैसूर के दीवान रहे हैं। उन्होंने हमारी समिति में बहुत परिश्रम किया है। जब मैं डॉक्टरी की शिक्षा प्राप्त कर रहा था तो वे मैसूर में असिस्टेंट कमिश्नर थे। आगे चलकर वे दीवान हो गये। इस प्रकार उन्हें बहुत अनुभव रहा है इस कार्य में उनके हाथ बटाने से भी लाभ हुआ है।

एक व्यक्ति ऐसे हैं जिनकी ओर किसी का ध्यान नहीं गया है और जिनके नाम की चर्चा मेरे किसी मित्र ने नहीं की है। वे विनम्र तथा मधुर भाषी सआदुल्ला साहब हैं। उनके मूल्यवान अनुभव से इस सभा को अपने विचार विमर्श में बड़ी सहायता मिली है।

अन्त में मैं मेरे सामने बैठने वाले चुस्त बदन तथा लम्बे कद के एक व्यक्ति की ओर सभा का ध्यान आकर्षित करता हूं जिन्हें विरोधियों के तर्कों का खण्डन करने के लिये प्रबल प्रतिवादिता तथा प्रवर बुद्धि की देन है और साथ ही क्षतिपूर्ति की विशाल शक्ति भी प्राप्त है। यह व्यक्ति श्री टी.टी. कृष्णमाचारी हैं।

हमें इन सभी लोगों से सहायता मिली है किन्तु श्रीमान बिना आप की विनम्रता तथा मधुरता के इस सभा का कार्य विफल ही रहता। यदि आप किसी सदस्य को अधिक न बोलने देना चाहते थे तो आप अपनी इन्हीं विशेषताओं का आश्रय लेते थे। आप किसी सदस्य का ध्यान आकर्षित करने के लिये बहुत धैर्य से काम लेते थे। इसके विपरीत आपका ध्यान आकर्षित करने के लिये किसी को कुछ भी प्रयास नहीं करना पड़ता था। आप बहुत धीरे से यह संकेत करते थे कि वक्ता को अब अपनी बात समाप्त कर देनी चाहिये। यदि कभी हम में से कुछ लोगों को अपने व्यवहार में नियमों का, अथवा व्यवस्था का ध्यान नहीं रहता था तो आप केवल मुस्करा देते थे और इस प्रकार इस ढंग के व्यवहार को समाप्त कर देते थे।

मैं यह कहूंगा कि हमने एक बहुत बड़े उद्देश्य की पूर्ति की है। हमने जो कार्य किया है उसका महत्व घटाना उचित नहीं है। बहुत कार्य परोक्ष में हुआ

[डॉ. बी. पट्टाभी सीतारम्य्या]

है। यदि इस सभा के बहुसंख्यक दल ने कठोर अनुशासन को स्वीकार न किया होता तो इसके विचार विमर्श के फलस्वरूप हमें इतना सुखद परिणाम प्राप्त न हुआ होता।

इस महान कार्य को सम्पन्न करने के लिये मैं आप सभी को धन्यवाद देता हूं तथा आपको बधाई भी देता हूं।

मैं अब केवल यह कहना चाहता हूं कि अपना कार्य आरम्भ करने के लिये हमने एक सुन्दर संविधान का निर्माण किया है। आप अपनी पूरी योग्यता से उसे व्यवहार में लायें और उसे आधार मान कर कार्य करें। 19वीं शताब्दी में जब इंगलिस्तान में मताधिकार को अधिक विस्तृत किया गया था तो उस अवसर पर कामन्स सभा में संसदीय विषयों के एक महान नेता ने कहा था आप यह संकल्प करें कि "हम अपने प्रभुत्वों को सीख देंगे।"

***श्री जगत नारायण लाल** (बिहार: जनरल): श्रीमान, डॉ. सीतारमय्या की उच्च वकृता के पश्चात् मुझे अब अधिक बातें कहने की आवश्यकता नहीं रह गई है। किन्तु मैं संविधान के सम्बन्ध में कुछ शब्द कहना चाहता हूं। कई मित्रों ने इसकी आलोचना की है और कई ने इसका समर्थन किया है। मैं समझता हूं कि यह संविधान संघात्मक भी है और एकात्मक भी। न तो यह पूर्णतया अमरीका के संविधान पर आधृत है और न पूर्णतया इंग्लिस्तान के संविधान पर। इसमें दोनों देशों की शासन-प्रणालियों का समावेश है और साथ ही इसकी अपनी विशेषता भी है जो भारत की स्थिति को देखते हुए बहुत आवश्यक है। केन्द्र को नियंत्रण की जो शक्ति दी गई है वह मेरे विचार से बहुत आवश्यक है। सबसे बड़ी आवश्यकता यही है कि देश की एकता को बनाये रखा जाये। इस देश के इतिहास की यह विशेषता रही है कि समय-समय पर इसकी एकता भंग होती रही है और यह विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा विजित होता रहा है। श्रीमान, चूंकि अब विदेशी शासन का अन्त हो गया है इसलिये इस समय सबसे बड़ी आवश्यकता इसकी है कि देश की एकता को अक्षुण्ता रखा जाये। इसे दृष्टि में रखते हुए मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि भाषा के आधार पर प्रान्तों का पुनर्निर्माण नहीं किया जाना चाहिये। हमारी हमेशा ही यही धारणा रही है कि यदि प्रान्तों का पुनर्निर्माण करना ही है तो उसे शासन की दृष्टि से करना चाहिये। इस दृष्टि से आन्ध प्रान्त के निर्माण की आवश्यकता है। यदि शासन की सुविधा की दृष्टि से किसी प्रान्त के निर्माण की आवश्यकता है तो वह आन्ध्र प्रान्त की है। हमने यह निर्णय भी किया है कि शासन की दृष्टि से कुछ अन्य प्रान्तों के पुनर्निर्माण की भी आवश्यकता है। यथोचित स्थिति उत्पन्न होने पर, तथा यथोचित अवसर आने पर, उनका पुनर्निर्माण किया जाना चाहिये।

मैंने यह देखा है कि इस सभा में, तथा अन्यत्र, इस संविधान में निदेशक तत्वों को समाविष्ट करने की भी आलोचना की गई है। ये निदेशक तत्व बहुत ही आवश्यक हैं। इन तत्वों के आधार पर राज्य को कार्य करना है। इन तत्वों में गांधीवाद तथा समाजवाद दोनों का समावेश है। आयरलैंड के संविधान के अनुच्छेद 45 में भी इस प्रकार के निदेशक तत्वों का वर्णन है।

अब श्रीमान, मैं इस संविधान की कुछ कमजोरियों की ओर ध्यान दिलाऊंगा, अर्थात् उन बातों की ओर ध्यान दिलाऊंगा जो रह गई हैं। उदाहरणार्थ मेरी यह इच्छा थी की "इंडिया" के पूर्व "भारत" का उल्लेख किया जाता। इसमें कोई सन्देह नहीं कि "भारत" और "इंडिया" दोनों का उल्लेख किया गया है किन्तु मेरी यह इच्छा थी कि "भारत" का उल्लेख पहले किया जाता।

श्रीमान, मुझे इसका खेद है कि हम संविधान से ईश्वर के नाम का बहिष्कार करने के लिये बहुत चिंतित रहे हैं। अन्य देशों के संविधानों को देखने पर मुझे ज्ञात हुआ है कि दक्षिणी अफ्रीका के संविधान के पहले अनुच्छेद में ही कहा गया है "संघ के लोग सर्वशक्तिमान परमात्मा की सर्वसत्ता तथा पथ प्रदर्शन को स्वीकार करते हैं।" श्रीमान, हमारा देश सदा एक धर्मप्रधान देश रहा है और यहां अध्यात्म को ही सदा महत्व दिया गया है। आधुनिक काल में भी अध्यात्म के क्षेत्र में इस देश में सबसे महान व्यक्ति ने जन्म लिया है। मेरी यह इच्छा थी कि इस संविधान में ईश्वर के नाम का उल्लेख किया जाता। इसके अतिरिक्त संविधान में "धर्मनिरपेक्ष राज्य" का उल्लेख नहीं किया जाना चाहिये था। केवल यह उल्लेख पर्याप्त होता कि राज्य किसी धर्म में हस्तक्षेप नहीं करेगा अथवा यह न कह कर कि राज्य धर्म निरपेक्ष होगा हम यह भी कह सकते थे कि उसका दृष्टिकोण अध्यात्म और नैतिकता का होगा। इन शब्दों को प्रविष्ट करने से बहुत भ्रम उत्पन्न हो गया है।

हमने अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को स्वीकार किया है किन्तु हममें से बहुत से लोग उन्हें पसंद नहीं करते हैं। किन्तु मेरी हमेशा यह धारणा रही है कि हमें अपने विचारों को दूसरों पर नहीं थोपना चाहिये और एक मत से जो भी निर्णय किया गया हो उसका हमें स्वागत करना चाहिये। मुझे आशा है कि कुछ समय पश्चात् हम एक दूसरे का दृष्टिकोण समझने लगेंगे।

आंग्ल भारतीयों के लिये हमने स्थान रक्षित किये हैं किन्तु मुझे यह भी नापसंद है। आंग्ल भारतीय शिष्ट तथा शिक्षित लोग हैं और उन्हें स्थानों के रक्षण की आवश्यकता नहीं है। वे अपनी योग्यता से ही यथोचित स्थान प्राप्त कर सकते हैं।

जहां तक गोवध के प्रतिषेध के प्रश्न का सम्बन्ध है, मैं अपने से पहले बोलने वाले वक्ता महोदय के इस विचार से सहमत हूं कि उसका संविधान में स्पष्ट शब्दों में उल्लेख किया जाना चाहिये था। गोवध के प्रतिषेध का उल्लेख उस प्रकार न किया जाना चाहिये था जैसे कि वह किया गया है। इस देश के अधिकांश

[श्री जगत नारायण लाल]

निवासियों के लिये गाय एक पवित्र पशु है। इस सम्बन्ध में इनकी बड़ी प्रबल धारणा है। जैसा कि महात्मा गांधी कहते थे गाय सारे पशु-वर्ग की प्रतिनिधि है। एक समय था जब इस देश में केवल गोवध की नहीं बल्कि प्रत्येक पशु का वध प्रतिषिद्ध था।

मैं सभा का अधिक समय नहीं लेना चाहता। मैंने ये थोड़ी-सी आपत्तियां की हैं किन्तु मैं संविधान का समर्थन करता हूं। मुझे विश्वास है कि देश का भविष्य उज्ज्वल है और एक नवीन युग का आरम्भ होने वाला ही है जिसमें हमारा राज्य सशक्त, सुस्थिर तथा सुसम्पन्न हो जायेगा।

अन्त में मैं अध्यक्ष महोदय तथा मसौदा-समिति के सदस्यों और विशेषतया डॉ. अम्बेडकर, श्री मुंशी और श्री कृष्णमाचारी तथा अन्य लोगों के कार्य की हृदय से प्रशंसा करता हूं।

***अध्यक्षः** मैं सभा को यह सूचित करना चाहता हूं कि दोपहर के पश्चात् एक घंटा डॉ. अम्बेडकर लेंगे। अबसे एक बजे तक का समय श्री कृष्णमाचारी को दिया जायेगा। दोपहर के पश्चात् हमें एक घंटा और मिलेगा और इस समय में जितने भी सदस्यों को बोलने का अवसर देना सम्भव होगा दूंगा।

यद्यपि यह नियमों में नहीं दिया हुआ है किन्तु क्या सभा मुझे इसकी आज्ञा देती है कि मैं सदस्यों के लिखित भाषण स्वीकार कर लूं?

***कुछ माननीय सदस्यः** जी नहीं, श्रीमान्

***अध्यक्षः** मैं समझता हूं कि सभा यह नहीं चाहती है। दोपहर के पश्चात् उस एक घंटे में मैं जितने भी सदस्यों को हो सकेगा बोलने का अवसर दूंगा।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** अध्यक्ष महोदय, सबसे पहले मैं इस आदरणीय सभा के सदस्यों को मसौदा-समिति की ओर से धन्यवाद देता हूं। चाहे संविधान के विभिन्न उपबन्धों के सम्बन्ध में उनकी सम्मति कुछ भी रही हो किन्तु उन सब ने मसौदा-समिति के काम की प्रशंसा की है। श्रीमान, हमारे एक सत्तर वर्षीय नेता ने तो मसौदा-समिति के प्रत्येक सदस्य को चुनकर उसकी प्रशंसा की है। उनके शब्दों को हम सभी आजन्म स्मरण रखेंगे।

श्रीमान, इस संविधान की अथवा इसके कुछ उपबन्धों की जो आलोचना की गई है मैं समझता हूं कि मैं उसके प्रत्येक अंश के सम्बन्ध में नहीं बोल सकूंगा और सम्भवतः इसकी आवश्यकता भी नहीं है। किन्तु इस समय यदि उन आलोचनाओं का उत्तर नहीं दिया गया जो कुछ सदस्यों ने इस संविधान के उपबन्धों को गलत ढंग से समझ कर अथवा भ्रमवश की है तो जिन लोगों के लिये यह संविधान बनाया गया है उन्हें मिथ्या धारणा हो सकती है। मेरे पास जो समय है

उसमें मैं आपकी तथा इस सभा की अनुमति से इन आलोचनाओं में से कुछ के सम्बन्ध में बोलना चाहता हूं।

श्रीमान, यदि मैं विभिन्न आलोचनाओं की गणना करूं तो मेरा पूरा समय ही व्यय हो जायेगा। किन्तु मैं सभा को यह बताना चाहता हूं कि ये आलोचनाएं विभिन्न प्रकार की हैं और एक आलोचना से दूसरी आलोचना का खण्डन हो जाता है। मैंने कुछ आलोचनाओं को कागज़ पर लिखा है और मैं उन्हें पढ़कर सुनाऊंगा। इस संविधान का एक बड़ा दोष यह बताया गया है कि यह संघात्मक नहीं है बल्कि एकात्मक है। कुछ सदस्यों की यह धारणा है कि इस संविधान की श्रेणी इन दो श्रेणियों के बीच की श्रेणी है चाहे इसका जो कुछ भी अर्थ लगाया जाये। एक तीसरे वर्ग के लोगों की यह धारणा है कि इसमें एक विकेन्द्रित एकात्मक राज्य का निरूपण किया गया है मेरे विचार से यह श्री गुप्ते ने कहा था। साथ ही श्री गुप्ते ने "राज्य" शब्द के प्रयोग पर भी आपत्ति की थी, क्योंकि संघ के लोगों में राज्यत्व सन्निहित नहीं है। साधारणतया यह आपत्ति की गई है कि संविधान द्वारा बहुत सकेन्द्रण किया गया है, जिसके फलस्वरूप संघांगों को स्वयं किसी कार्य करने का सामर्थ्य नहीं रह जाता। प्रान्तों की ओर से बोलने वाले अधिकांश लोगों ने यह आपत्ति की है कि प्रान्तों की वित्तीय स्थिति को संकटपूर्ण ही रहने दिया गया है। एक आपत्ति यह भी की गई है कि हमने अन्य संविधानों के उपबन्धों की केवल नकल ही की है। यह भी कहा गया है कि समझदारी की बात यह थी कि हम अमरीका के संविधान अथवा रूस के संविधान के आधार पर अपने संविधान का निर्माण करते। श्री के.टी. शाह ने, जो इस समय अनुपस्थित हैं, यह कहा है कि हमने सक्रिय लोकतंत्र की व्यवस्था नहीं की है।

कुछ आपत्तियां उन वक्ताओं ने की हैं जिनके भाषणों को मैं पूर्णतया नहीं समझ पाया क्योंकि जिस भाषा में वे बोले थे उसे मैं नहीं समझ पाया। उन की मुख्य आपत्ति यह है कि इस संविधान का स्वरूप भारतीय नहीं है और इसमें भारतीय संस्कृति की छाप नहीं है। एक आपत्ति यह भी की गई है कि इस के द्वारा आर्थिक प्रत्याभूतियां नहीं दी गई हैं। यह आपत्ति श्री दामोदर स्वरूप ने की थी। इस कारण वे यह चाहते थे कि यह संविधान अस्वीकार कर दिया जाये।

इसके अतिरिक्त यह आपत्ति की गई है कि यह संविधान बहुत लम्बा है और इसमें अनावश्यक विवरण दिया गया है। इस प्रकार इसके विकास की कोई सम्भावना नहीं रह जाती। तिरुवांकुर राज्य के एक सदस्य ने यह कहा था (और सम्भवत: किसी अन्य सदस्य ने भी यही आलोचना की हो) कि बीमार के संविधान ने हिटलर को जन्म दिया और सम्भव है कि यह संविधान भी किसी हिटलर को

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

जन्म दे। यह आपत्ति साधारणतया सभी मूलाधिकारों के सम्बन्ध में की गई है और विशेषतया उन उपबन्धों के सम्बन्ध में की गई है जो वैयक्तिक स्वातंत्रय तथा आयात के सम्बन्ध में हैं। अनुच्छेद 360 तथा 365 की बहुत आलोचना की गई है।

देशी राज्यों के कुछ सदस्यों ने यह शिकायत की है कि देशी राज्यों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया गया है। साथ ही देशी राज्यों के कुछ सदस्यों ने यह भी कहा है कि देशी राज्यों के साथ उस प्रकार का व्यवहार नहीं करना चाहिये था जैसा कि प्रान्तों के साथ किया गया है। सैद्धान्तिक दृष्टि से शक्तियों के पृथक्करण पर जोर दिया गया ओर वक्ताओं ने यह कहा कि इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया गया और संविधान में इस सम्बन्ध में उपबन्ध नहीं रखे गए हैं। कुछ माननीय सदस्यों ने यह कहा है कि इस संविधान द्वारा राष्ट्रपति को एक स्वेच्छाचारी शासक बना दिया गया है। कुछ अन्य लोगों ने यह कहा है कि इस संविधान द्वारा प्रधानमंत्री को एक स्वेच्छाचारी शासक बना दिया गया है। एक आधारभूत आपत्ति यह की गई है कि इस का कहीं उल्लेख नहीं है कि राष्ट्रपति राज्य का संविधानिक प्रभुत्व है। अन्य कई आपत्तियां भी की गई हैं, जैसे कि भाषा-विषयक उपबन्ध अटकते हुए हैं और यह कि संविधान हिन्दी में बनाया जाना चाहिये था। पिछले सात दिनों के वाद-विवाद का मुख्य विषय निस्सन्देह गाय ही रही है। यह आवाज़ भी उठाई गई है कि इस संविधान के अधीन समाजवाद नहीं पनप सकता और कुछ माननीय सदस्यों ने इसी से सम्बन्धित यह आपत्ति भी की है कि आवश्यकता न होने पर भी सम्पत्ति-विषयक अधिकारों को सुरक्षित किया गया है। किन्तु मेरी माननीय मित्र बेगम ऐज़ाज़ रसूल ने यह आपत्ति की है कि सम्पत्ति-विषयक अधिकारों की पर्याप्त सुरक्षा नहीं की गई है। इस प्रकार माननीय सदस्यों के ध्यान में आ गया होगा कि ऐसी आलोचनाएं की गई हैं जो एक-दूसरे का खण्डन करती हैं। यदि सभी आलोचनाओं को एक साथ रखा जाये तो सम्भवत: हमारा, अर्थात् इस सभा की मसौदा-समिति के सदस्यों का यह विचार हो कि आखिर हमने जो कुछ किया है वह ठीक ही किया है।

श्रीमान, मैं कुछ आधारभूत आपत्तियों के सम्बन्ध में बोलना चाहता हूं क्योंकि, जैसा कि मैं कह चुका हूं, यह उचित नहीं होगा कि हम इन आलोचनाओं का उत्तर न दें। मैं पहले एक ऐसे प्रश्न को उठाऊंगा जो अंशत: एक सैद्धान्तिक प्रश्न है, किन्तु इस देश के जनसाधारण के लिये उसका महत्व है। क्या हम एक एकात्मक संविधान का निर्माण कर रहे हैं? क्या इस संविधान के फलस्वरूप शक्ति का संकेन्द्रण दिल्ली में हो जायेगा? क्या कोई ऐसी व्यवस्था भी की गई है जिससे विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के हितों की रक्षा हो सकती है और स्थानीय प्रशासन के सम्बन्ध में उनके मत को महत्व दिया जा सकता है? मेरे विचार से यह आरोप एक बहुत बड़ा आरोप है कि यह संविधान संघात्मक नहीं बल्कि एकात्मक है। हमें यह न भूलना चाहिये कि भारतीय संविधान के संघात्मक होने

के प्रश्न को हमारे स्वर्गीय नेता ने अठारह वर्ष पूर्व लंदन के गोल मेज़ सम्मेलन में तय कर दिया था। मेरे विचार से भारत-शासन-अधिनियम के कुछ उपबन्धों का स्वरूप उनके तर्क के अनुसार ही निश्चित किया गया था यद्यपि प्रान्तीय स्वायत-शासन के सम्बन्ध में गोल मेज़ सम्मेलन में भाग लेने वाले मुसलमान सदस्यों के दृष्टिकोण के अनुसार ही बहुत कुछ निर्णय किया गया था। आखिर संघ है क्या चीज़? मुझे इसकी प्रसन्नता है कि मेरे माननीय मित्र पंडित हृदयनाथ कुंजरू इस सभा में उपस्थित हैं क्योंकि उन्होंने हमसे आग्रह किया था कि हम संघ का विवरण न दें। यह कोई सुस्पष्ट संज्ञा नहीं है और न इसका कोई सुनिश्चित अर्थ ही है। इस पद की परिभाषा समय-समय पर बदलती रही है। यदि हम ईसा के पूर्व के काल की, अथवा मध्य कालीन युग की राजनैतिक विचारधाराओं की ओर ध्यान न दें; और आधुनिक युग की विचारधाराओं की ओर ही ध्यान दें, तो हमें ज्ञात हो जायेगा कि संघात्मक संविधान के सम्बन्ध में पहले-पहल अमरीका के तेरह उपनिवेशों के लोगों ने विचार किया था। इसकी चर्चा हमें उन लोगों के लेखों में मिलती है जिन्होंने अमरीका के संविधान का निर्माण किया। उन्होंने इस विषय के सम्बन्ध में विभिन्न अनुच्छेदों का निर्माण किया जिन्हें ''फैडोयिस्ट'' नाम की एक पुस्तक में संकलित किया गया। राजनैतिक विचारधारा को "संघ" का वर्तमान पद अठारहवीं शताब्दी के अमरीका के संघवादियों ने प्रदान किया। उन्होंने जिस अर्थ में वह पद प्रयोग किया था उसमें, तथा उसके वर्तमान अर्थ मैं, बहुत भेद को गया है। राजनीति-शास्त्र के विद्यार्थियों को विदित हागा कि हेमिल्टन के वह विचार नहीं थे जो जेफरसन अथवा मेडिसन के थे। यद्यपि उस समय उन लोगों को जिन प्रश्नों को हल करना था वे आज की तुलना में सीमित थे और अमरीका के संविधान के निर्माण के समय वहां जो स्थिति थी उसी से प्रेरित होकर उन्होंने अपनी विचारधारा प्रतिपादित की थी, किन्तु उनका इतना महत्व तो था ही कि वे आगे चल कर संविधान के निर्वाचन पर अपना प्रभाव डालते। वास्तव में उन माननीय सदस्यों को जो अमरीका के संविधान से परिचित हैं; यह विदित होगा कि अमरीका की राष्ट्रीय सरकार के स्वरूप को बहुत कुछ निश्चित करने वाले सज्जन अर्थात् मार्शल का यह विचार था कि राष्ट्रीय सरकार को सशक्त बनाने के लिये है। मिल्टन ने जो कुछ किया उसका उसके उत्तराधिकारियों ने, विशेषतया मुख्य न्यायाधिपति टैनी ने, जो पूर्णतर्या जेफरसन का मतावलम्बी था, निराकरण कर दिया था। मैं अमरीका के संविधान का विवरण नहीं देना चाहता, और न यह बताना चाहता हूं कि उत्तरोत्तर उस का निर्माण कैसे हुआ, किन्तु हमें यह समझना चाहिये कि चाहे संविधान के निर्माताओं का कुछ भी उद्देश्य क्यों न रहा हो और "संघवाद" का अर्थ वे चाहे कुछ भी क्यों न समझते हों, अमरीका के गृह-युद्ध के पश्चात् सारी स्थिति ही बदल गई और तब से संविधान के उपबन्धों का अनेक बार ऐसा निर्वाचन किया गया है कि राष्ट्रीय सरकार की शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती गई है। केवल कुछ समय के लिये, अर्थात् 1919 से लेकर 1920 तक, यह नहीं होने पाया और इस काल में जेफरसन के विचारों का प्रभाव रहा। भले ही यह चर्चा सैद्धान्तिक प्रतीत हो किन्तु मैं इस पर इसलिये ज़ोर दे रहा हूं कि इसके प्रकाश में इस संविधान की कई आलोचनाएं निराधार प्रमाणित हो जायेंगी। मैं चाहता

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

हूं कि माननीय सदस्य इन बातों को स्मरण रखें। इस कारण भी वे इन्हें स्मरण रखें कि इससे इस आरोप का भी निराकरण हो जाता है कि यह संविधान बहुत लंबा हो गया है।

कई माननीय सदस्यों ने यह कहा है कि हमें अमरीका के संविधान की नकल करनी चाहिये थी। इस सभा के बाहर के कुछ प्रतिष्ठित नेताओं ने भी जिन्हें संविधानिक विधि के जानकार होने की ख्याति प्राप्त है और जो उच्च पदस्थ भी हैं; यह कहा है कि हमें अमरीका के संविधान की नकल करनी चाहिये थी और यह भी सम्मति प्रकट की है कि यह लम्बा-चौड़ा संविधान बेकार है, अथवा उन्होंने यह मत प्रकट किया है कि हमें संविधान में कुछ सामान्य उपबन्ध रखने चाहिये थे ताकि उनका विकास हो सकता। किन्तु इस सभा के इन माननीय सदस्यों से, तथा बाहर के इन सज्जनों से, मेरा निवेदन है कि वे उन निर्णयों पर भी दृष्टिपात करें जो इस समय अमरीका के संविधान के अंग हैं। उन्हें विदित हो जायेगा कि अमरीका के संविधान को समझने के लिये केवल मूल पाठ को ही नहीं पढ़ना होता है बल्कि उच्चतम न्यायालय के पिछले डेढ़ सौ वर्षों के निर्णयों को भी पढ़ना होता है। अमरीका में 1862 के पश्चात् राष्ट्रीय सरकार की शक्तियों को अनेक उपायों से बढ़ाया गया है। वास्तव में मार्शल ने भी यह कहा है कि ऐसी भी शक्तियां हैं जो सविधान में सन्निहित हैं। बाद में न्यायालयों के निर्णयों में यह कहा गया है कि राष्ट्रीय सरकार को कुछ शक्तियां प्रत्यक्ष रूप से दी गई हैं और कुछ शक्तियां परोक्ष रूप से दी गई हैं। इसके अतिरिक्त न्यायालयों के निर्णयों द्वारा भी राष्ट्रीय सरकार को शक्तियां प्रदान की गई; क्योंकि सरकार के मुख्य-मुख्य कृत्यों के निर्वहन के लिये इनकी आवश्यकता थी। साथ ही संघीय विधान-मंडल ने भी अपने क्षेत्राधिकार को अधिक विस्तृत बना दिया, क्योंकि अपने कृत्यों के निर्वहन के लिये उसके लिये यह कहना आवश्यक था। इन शक्तियों को "परिणाम-मूलक शक्तियां" भी कहा गया है क्योंकि इनके प्रयोग के फलस्वरूप जो परिणाम होंगे उनकी गणना की गई है। अमरीका के संविधान में राष्ट्रीय सरकार की संधि करने की जिस शक्ति का उल्लेख किया गया है, उसे भी बहुत विस्तृत बना दिया गया है। वास्तव में इस शक्ति के प्राप्त होने से कभी तो केन्द्रीय सरकार ने प्रान्तीय सरकारों के क्षेत्र में भी हस्तक्षेप किया है। न्यायिक शक्ति प्रदान करने की विधाई शक्ति प्राप्त होने से राज्यों के क्षेत्राधिकार में भी हस्तक्षेप हुआ है। तीन शक्तियों का तो, अर्थात् प्रस्तावना में और धारा 8 के अनुच्छेद 1 में उल्लिखित लोक-कल्याण-विषयक शक्ति तथा वाणिज्य विषयक शक्ति का और कर लगाने की शक्ति का बहुत विस्तृत अर्थ लगाया गया है। मेरी माननीय मित्र श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर ने अपने भाषण में इन शक्तियों की चर्चा की थी। इसके अतिरिक्त केन्द्र की धन व्यय करने की तत्सम्बन्धी शक्ति को प्रयोग किया गया है और इस प्रकार कर लगाने की शक्ति को अधिक विस्तृत किया गया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि अमरीका में इस समय संघ की एक केन्द्रीय लोक-स्वास्थ्य

सेवा है और विभिन्न राज्यों में विभिन्न मंडल अपने-अपने विभागों का प्रशासन करते हैं।

मैंने यह विवरण इस सभा के माननीय सदस्यों को केवल यह बताने के लिये दिया है कि यदि हमने अपना संविधान अमरीका के संविधान को नमूना मानकर बनाया होता तो हमने जितना विवरण दिया है उससे कहीं अधिक विवरण देने की आवश्यकता पड़ती और वास्तव में इस संविधान द्वारा हमने केन्द्र जितनी शक्तियां प्रदान की हैं उससे कहीं अधिक शक्तियां प्रदान करने की आवश्यकता पड़ती।

श्रीमान, अमरीका के संविधान को देखते हुए यह कहना कठिन है कि उस देश में इस समय संघवाद की क्या स्थिति है। अमरीका के संविधान पर लास्की ने हाल में जो पुस्तक लिखी है उसके अन्त में लेखक कहता है, "यदि लोग अमरीका के संविधान को समझना चाहते हैं तो उन्हें जानना चाहिये कि वहां के प्रेजीडेंट की क्या स्थिति है।" अमरीका की संघात्मक प्रणाली में सबसे बड़ा परिवर्तन यह हुआ है कि प्रेज़ीडेंट की प्रतिष्ठा को तथा उसकी शक्तियों को बहुत बढ़ा दिया गया है। लेखक का यह विचार है कि थोड़े ही समय पश्चात् संघवाद के सिद्धान्त का कोई ऐतिहासिक महत्व नहीं रह जायेगा।

श्रीमान, अपने संविधान का निर्माण करने में हमें क्या अमरीका के संविधान के उन अंगों को अपनाना चाहिये जो अब जीर्ण हो गये हैं और जिनका केवल ऐतिहासिक महत्व ही है? क्या हमें उन अंगों को छोड़ देना चाहिये जिनका सम्बन्ध व्यवहार से है ताकि इस सभा के तथा बाहर के कुछ माननीय सज्जनों का सौंदर्य-प्रेम तृप्त हो सके। इन लोगों का यह विचार है कि हमारा संविधान स्तोत्र-गुटिका के समान होना चाहिये जिसे महिलाएं अपने चोलों में इधर-उधर ले जा सकें। संविधान द्वारा जनसाधारण के समक्ष एक विचारधारा रखी जानी चाहिये और उसका अर्थ स्पष्ट होना चाहिये। जनसाधारण को इस स्थिति में न डालना चाहिये कि उन्हें न्यायालयों के निर्णयों पर अथवा विशेषज्ञ वकीलों के निर्वचन पर निर्भर रहना पड़े।

इस प्रसंग में मैं अवशिष्ट शक्तियां प्रदान करने के सम्बन्ध में जो प्रश्न उठाया गया है उसके बारे में कुछ कहना चाहता हूं। मेरे विचार से कई माननीय सदस्यों ने यह कहा है कि चूंकि हमारे संविधान में अवशिष्ट शक्तियां केन्द्र को दी गई हैं इस कारण हमारा संविधान एकात्मक संविधान हो गया है। मेरे विचार से मेरे माननीय मित्र श्री गुप्ते ने अपने भाषण में यह भी कहा था कि, "इसका प्रमाण यह है कि अवशिष्ट शक्तियां केन्द्र को दी गई हैं।" मैं श्री गुप्ते की इस बात पर गम्भीरता से विचार करना चाहता हूं क्योंकि उन्होंने संघवाद-विषयक किसी किताब को सावधानी से पढ़कर यह बात कही है। मैं माननीय सदस्यों को बताना चाहता हूं कि यदि इसकी परीक्षा करनी है कि कोई संविधान संघीय प्रणाली पर आधृत है या नहीं तो इस प्रसंग में इसका अधिक महत्व नहीं है कि अवशिष्ट

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

शक्तियां राज्यों को प्रदान की गई हैं अथवा केन्द्रीय सरकार को प्रदान की गई हैं। श्री के.सी. व्हेर ने संघवाद पर हाल में एक पुस्तक लिखी है जिसमें उन्होंने इस विषय की चर्चा की है। इस प्रश्न को उन्होंने कुछ भी महत्व नहीं दिया है। यद्यपि मुझे कुछ विवरण देना पड़ेगा किन्तु मैं यह बताना चाहता हूं कि जर्मनी के राजनैतिक दार्शनिकों ने ही क्षमता-सिद्धान्त को जन्म दिया है। यह सिद्धान्त इस प्रकार है कि राष्ट्रीय सरकार को, अथवा राज्य को, ऐसी क्षमता अपने अधिकार में लेने की शक्ति प्राप्त है जो पहले उन्हें नियमित रूप से प्राप्त थी, अथवा जो बाद में अस्तित्व में आई थी। जिस संविधान में यह क्षमता राज्य को प्राप्त है वह संविधान संघात्मक संविधान कहलायेगा। वास्तव में इस प्रकार के राज्य कभी अस्तित्व में नहीं आये। यदि किसी अंगभूत राज्य को यह क्षमता अवश्य ही केन्द्रीय सरकार को सौंपनी पड़े तो वह शासन-व्यवस्था संघात्मक शासन-व्यवस्था नहीं कही जायेगी। वह व्यवस्था राज्य संघ की व्यवस्था कही जायेगी, यह कहा गया है कि जिन परिभाषाओं में इस प्रकार की शर्तें रखी गई थीं वे निरर्थक हैं और वह इस कारण कि जो कोई भी परिवर्तन करना हो वह संशोधन करने की शक्ति द्वारा किया जा सकता है। संशोधन करने की शक्ति केन्द्र को प्राप्त रहती ही है और उसके अधीन वह जब चाहे तब कदम उठा सकता है।

मुझे इसकी प्रसन्नता है कि यद्यपि श्री पातस्कर ने संविधान की ऊपरी तौर पर बहुत विस्तृत आलोचना की है किन्तु उन्होंने यह स्वीकार किया है कि इस संविधान का संशोधन करने के सम्बन्ध में जो उपबन्ध रखे गये हैं वही इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। मैं इससे सहमत हूं, कि सबसे बड़ी विशेषता संशोधन करने की शक्ति ही है और यह निवेदन करना चाहता हूं कि संविधान में जिन विषयों की चर्चा की गई है उनमें से अधिकांश के सम्बन्ध में संशोधन करने की शक्ति केन्द्र को प्रदान की गई है। एकात्मक राज्य की जो कसौटी है उसे ध्यान में रखते हुए, तथा इस विशेषता को ध्यान में रखते हुए, हम यह कह सकते हैं कि केवल इस विशेषता के कारण भी यह संविधान संघात्मक संविधान कहा जा सकता है।

***श्री एच.वी. पातस्कर:** मैंने यह नहीं कहा कि केवल यही उपबन्ध संतोषजनक है किन्तु यह कहा कि यह उपबन्ध संतोषजनक है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मेरे माननीय मित्र ने अपने भाषण की इस बात को जिस रूप में बताया है उस रूप में उसे स्वीकार करने के लिये मैं तैयार हूं। ये बातें इसकी कसौटी नहीं हैं कि कोई संविधान संघात्मक है या नहीं। किसी भी संघात्मक संविधान के उपबंधों को देखने पर आपको विदित हो जायेगा कि जब तक राष्ट्रीय सरकार का अस्तित्व बना रहता है तब तक संविधान के एक भाग का स्वरूप एकात्मक ही बना रहता है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि संविधान का स्वरूप एकात्मक हो जाता है क्योंकि जब तक राष्ट्रीय सरकार अस्तित्व में रहती है तब तक उस सरकार को, गिनती करके अथवा अन्य प्रकार, कुछ

शक्तियां दी ही जाती हैं। केवल इन शक्तियों के प्रयोग होने से ही कोई संविधान एकात्मक संविधान नहीं हो जाता।

यह जानने के लिये कि यह संविधान एकात्मक है या नहीं मैं अपने माननीय मित्र से निवेदन करता हूं कि वे एक साधारण परीक्षा करें। जर्मनी की एक राजनैतिक विचारधारा के अनुसार इसकी यह परिभाषा की गई है: पहली कसौटी यह है कि किसी राजनैतिक व्यवस्था को स्थापित करने के लिये राज्य अनिवार्य शक्ति का प्रयोग करें; दूसरी कसौटी यह है कि इस प्रकार की शक्ति किसी क्षेत्र के निवासियों पर समान रूप से प्रयोग की जाये; और तीसरी कसौटी, जो कि सबसे अधिक महत्वपूर्ण है, यह है कि किसी उच्च एकक द्वारा दिये गये आदेशों से राज्य की शक्ति पूर्णतया सीमित न हो। "पूर्णतया सीमित न होनी चाहिये" शब्दों का महत्व है क्योंकि इनका अर्थ है कि संघीय शक्ति के प्रयोग से राज्य की शक्ति अंशत: तो अवश्य ही सीमित होगी। इन सब बातों की ओर ध्यान दिलाते हुए मैं निवेदन करना चाहता हूं कि हमारा संविधान संघात्मक संविधान है। मेरा निवेदन है कि अपने संविधान द्वारा हमने एककों को सारपूर्ण तथा महत्वपूर्ण विधायी और कार्यपालिका शक्तियां प्रदान की हैं।

यदि आप मुझसे यह पूछें कि हमने अवशिष्ट शक्तियां केन्द्र को क्यों प्रदान की हैं और क्या इसका कोई विशेष अर्थ है तो मैं यह कहूंगा कि यह हमने इस कारण किया है कि हमने केन्द्र की, तथा राज्यों की शक्तियों की विस्तृत रूप से गणना की है और उनकी समवर्ती शक्तियों की भी गणना की है। मैं प्रोफेसर व्हरे की एक और सम्मति बतलाऊंगा। उन्होंने भारत-शासन अधिनियम का ऊपरी तौर पर अवलोकन किया है और उनका यह विचार है कि उसका सबसे उत्कृष्ण गुण यह है कि अनुसूची 7 में शक्तियों की पूर्ण रूप से तथा विस्तृत रूप से भी गणना की गई है। मेरे विचार से गणना न की हुई शक्तियों की श्रेणी में केवल एक शक्ति ऐसी है जिसका अवशिष्ट शक्ति के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। वह शक्ति कृषि-भूमि के मूलधन को उगाहने की शक्ति है। यह शक्ति न तो केन्द्र को दी गई है और न एककों को। शहरों की और कृषि की सम्मति पर लगाये जाने वाले सम्पत्ति कर और उत्तराधिकार कर की योजना के अधीन यदि कुछ समय पश्चात् केन्द्र को इस अवशिष्ट शक्ति को स्वीकार भी करना करना पड़े तो इसके प्रयोग से जो कुछ भी आय होगी उसे वह प्रान्तों को दे देगा, क्योंकि कृषि-सम्बन्धी सभी अधिकार प्रान्तों को सौंप दिये गये हैं। मेरे विचार से आज कल अवशिष्ट शक्तियों का अब केवल बौद्धिक महत्व ही रह गया है। यह कहना कि अवशिष्ट शक्तियां केन्द्र को प्रदान की गई हैं, और प्रान्तों को प्रदान नहीं की गई हैं, और इस कारण यह संविधान संघात्मक संविधान नहीं है, सही बात नहीं है।

केन्द्र और प्रान्तों के सम्बन्धों के प्रश्न के बारे में हमने जो एक दो सुन्दर बातें की हैं उनकी ओर मैं अपने माननीय मित्रों का ध्यान आकर्षित करता हूं।

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

हम इस सम्बन्ध में बहुत सावधान रहे हैं कि सरकार की शक्ति कभी शून्य न हो जाय। शक्तियों की गणना इस प्रकार की गई है कि चाहे किसी अवशिष्ट शक्ति को ग्रहण किया जाये या न किया जाये किन्तु सरकार किसी कदम को उठाने में शक्ति शून्यता का अनुभव नहीं करेगी। जहां तक हो सका है हमने ऐसी व्यवस्था की है कि मामले न्यायालय में इस कारण नहीं लाये जायेंगे कि संघ की ओर संघांगों की जो अपनी पृथक् शक्तियां हैं जो कभी समवर्ती हो जाती हैं। कनाडा के संविधान का यह एक दोष है। कनाडा के संविधान की धारा 91 और धारा 92 के अधीन जिन शक्तियों की गणना की गई है वे हैं तो पृथक् किन्तु कभी वे एक दूसरे का निराकरण कर देती हैं, अर्थात् कभी कभी केन्द्र और प्रान्तों के लिये समवर्ती क्षेत्र उत्पन्न हो जाता है। इसका परिणम यह हुआ कि न्यायालयों को अनेक मामलों में निर्णय करने पड़े हैं। संघात्मक संविधानों की नकल करने में हमने ऐसे दोषों को बहुत सावधानी से दूर किया है जैसे कि कनाडा के संविधान में विद्यमान है।

जहां तक समवर्ती क्षेत्र का सम्बन्ध है हमने भारत-शासन अधिनियम तथा आस्ट्रेलिया के संविधान के ततविषयक उपबन्धों से अच्छे उपबन्ध रखे हैं। भारत-शासन अधिनियम के अतिरिक्त केवल आस्ट्रेलिया के संविधान में ही समवर्ती शक्तियों का उल्लेख है। आस्ट्रेलिया के संविधान की समवर्ती शक्तियों के कारण बहुत विवाद उत्पन्न हुआ है। कार्यपालिका की कार्यवाही के लिये क्षेत्राधिकारों को पृथक् नहीं किया गया है। इसके कारण बहुत कलह रहा है। यद्यपि भारत-शासन अधिनियम में इन दोषों को ज्यों का त्यों रहने दिया गया था किन्तु अनुच्छेद 73 में हमने इन दोषों को नहीं रहने दिया है। यद्यपि इस अनुच्छेद पर इस सभा में बहुत वाद-विवाद हुआ है किन्तु मेरी यह धारणा है कि इस सभा के बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णयों में से यह भी एक निर्णय है। भारत-शासन-अधिनियम की धारा 126 में जो अर्थ-भ्रम है उसे इस अनुच्छेद में नहीं रहने दिया गया है। नये संविधान के अधीन विधि-निर्माण के सम्बन्ध में जब कभी केन्द्र समवर्ती क्षेत्र में हस्तक्षेप करेगा तो इसके लिये उसे जिस कार्यपालिका शक्ति की आवश्यकता होगी उसे वह स्पष्ट रूप से ग्रहण करेगा। मैं इस प्रश्न पर इसलिये जोर दे रहा हूं कि माननीय सदस्यों ने यह आरोप लगाया है कि प्रान्तीय सरकारों को कोई भी जिम्मेदारी नहीं दी गई है। इसे डींग मारना ही क्यों न कहा जाये किन्तु मैं यह कहूंगा कि मसौदा-समिति में मैं इसके लिये सचेष्ट रहा हूं कि जिम्मेदारियां अस्पष्ट न होने पायें। इस सभा के कुछ सदस्यों ने इस पर बहुत जोर दिया है कि विभिन्न सरकारों की जिम्मेदारियों का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख किया जाये। मेरे विचार से इस अनुच्छेद में जिम्मेदारियों को अस्पष्ट नहीं रहने दिया गया है।

मैं एक अन्य प्रश्न पर भी अपने विचार व्यक्त कर देना चाहता हूं। वह प्रश्न वित्तीय शक्ति का प्रश्न है, अर्थात् इसका प्रश्न है कि एककों और केन्द्र के बीच वित्तीय शक्ति का वितरण किस प्रकार हो। सामान्यत: यह आरोप लगाया गया है कि प्रान्तों के पास कोई साधन नहीं रहने दिये गये हैं और केन्द्र ने सब कुछ

अपने अधिकार में ले लिया है। मैं इससे सहमत नहीं हूं, क्योंकि इस प्रकार की बातें या तो केवल प्रचार दृष्टि से कही गई है या संविधान के उपबन्धों की केवल ऊपरी तौर से परीक्षा करने पर कही गई हैं। मैं प्रान्तों के वित्त मंत्रियों से कोई विवाद नहीं करना चाहता किन्तु मैं यह कहूंगा कि प्रान्तों के वित्त-मंत्री अपनी नीति के समर्थन के लिये यह कहते हैं, "हमारे पास धन नहीं है। केन्द्र हमें धन नहीं देता है। कर लगाने के सभी साधन केन्द्र के ही अधिकार में हैं।" मैंने सुना है कि एक दो वित्त-मंत्रियों ने हाल में यह वक्तव्य दिया है कि नये संविधान के प्रवर्तन में आने पर प्रान्तों की वित्तीय शक्ति समाप्त हो जायेगी। मैं इस आलोचना की विशेष रूप से इसलिये चर्चा कर रहा हूं कि मैं यह समझता हूं कि यह बिल्कुल गलत है और इसमें शरारत भी छिपी हुई है। वास्तव में भारत शासन अधिनियम में केन्द्र और एककों के बीच वित्त के वितरण की जो योजना स्वीकार की गई है उसमें बिना कोई आधारभूत परिवर्तन किये हुए इस संविधान में भी स्वीकार किया गया है। इस सभा के माननीय सदस्यों को यह विदित ही है कि हम इस प्रश्न पर पूर्ण रूप से अथवा विस्तारपूर्वक, विचार नहीं कर सके हैं। करों के बारे में हाल में काई जांच-पड़ताल नहीं हुई है। श्रीमान आपने एक विशेषज्ञ समिति नियुक्त की थी। उसके विचारणीय विषय बहुत कम थे और उसका प्रतिवेदन भी मोटी-मोटी बातों को लेकर तैयार किया गया था। इसलिये हमें बहुत कुछ 'भारत-शासन-अधिनियम' की ही योजना को स्वीकार करना पड़ा। मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि जब प्रान्तों और देशी राज्यों के वित्त मंत्रियों तथा प्रधानमंत्री और केन्द्रीय सरकार के कुछ मंत्रियों तथा मसौदा समिति के कुछ सदस्यों का सम्मेलन हुआ था उस समय मैंने उसके सामने यह सुझाव रखा था कि प्रत्यक्ष करों के सम्बन्ध में कृषि सम्पत्ति और अकृषि सम्पत्ति के विभेद को मिटा देना चाहिये जिससे गरीबों को अधिक धन मिल सके और कृषि आय पर आयकर की पूरी आय प्रान्तों को दी जा सके। कुछ प्रान्तीय मंत्रियों ने इस सुझाव को स्वीकार किया किन्तु उनमें जो सबसे बड़े थे उन्होंने कहा कि प्रान्त अभी इस परिवर्तन के लिये तैयार नहीं हैं। इसलिये स्थिति वश हमने केन्द्र और एककों के बीच वित्त के वितरण के सम्बन्ध में भारत शासन अधिनियम के उपबन्धों को ही रखा। हो सकता है कि एक दो विषयों के सम्बन्ध में प्रान्तों की वित्तीय शक्ति को निर्बन्धित किया गया है, जैसे कि विक्रय कर लगाने के सम्बन्ध में, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि इससे केन्द्र को कुछ लाभ हुआ है। देश की व्यवस्था को दृष्टि में रखकर न कि केन्द्र के लाभ को दृष्टि में रखकर, विक्रय कर को निर्बन्धित किया गया है। मेरी समझ में नहीं आया कि पिछले सात दिनों में यह शिकायत किस आधार पर की गई थी कि इस संविधान के अधीन प्रान्तों को स्वयं कदम उठाने की शक्ति नहीं रह जायेगी क्योंकि वे अर्थाभाव से पीड़ित रहेंगे। यह भी कहा गया है कि, चूंकि केन्द्र ने सभी वित्तीय साधन अपने अधिकार में लिये हैं, इसलिये यह संविधान एकात्मक संविधान है। मेरा इस सभा के माननीय सदस्यों से, जिनमें से अधिकांश भविष्य में संसद के सदस्य होने जा रहे हैं, यह अनुरोध है कि वे इस प्रश्न की गम्भीरतापूर्वक परीक्षा करें। इस समय मैं

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

डॉ. जॉन मथाई के उन शब्दों का स्मरण कराता हूं जो उन्होंने उस अवसर पर कहे थे जब वे हम लोगों के समक्ष उपस्थित हुए थे—वास्तव में वे हम लोगों के समक्ष उसी एक अवसर पर उपस्थित भी हुई थे। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि जहां तक वित्तीय शक्ति का सम्बन्ध है, केन्द्र और प्रान्तों में कोई प्रतिस्पर्धा नहीं है। वास्तव में केन्द्र को वित्त की जो आवश्यकता होती है वह रक्षा तथा प्रशासन के लिये ही होती है और यदि देखा जाये तो कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है जिसमें केन्द्र की विशेष दिलचस्पी हो और वह इस कारण उस पर अधिक धन व्यय करना चाहे।

मेरे विचार से आसाम के माननीय सदस्यों ने जो शिकायत की है उसकी मुझे इस अवसर पर चर्चा कर देनी चाहिये। मैं इससे सहमत हूं कि आसाम कुछ तो स्थितिवश, और कुछ सरकार के कार्यों के वश, संकट में पड़ा हुआ है। चाहे जो भी हो केन्द्र का यह कर्त्तव्य है और भविष्य की राष्ट्रीय सरकारों की यह जिम्मेदारी है कि कोई प्रान्त, कोई सीमावर्ती प्रान्त, कोई ऐसा प्रान्त जो आर्थिक दृष्टि से अशक्त हो, वित्त के अभाव के कारण संकट में न पड़े। जैसा कि मैं सभा को पहले बता चुका हूं, इस सम्बन्ध में केन्द्र और उसके एककों के बीच कोई प्रतिस्पर्धा नहीं है। वित्त विषयक उपबन्ध हमने अनुच्छेद 268 में रखे हैं, जिसके अधीन कुछ करों को केन्द्र आरोपित करेगा, किन्तु उनका संग्रह राज्य करेंगे जैसे कि औषधीय और प्रसाधनीय सामग्री पर शुल्क। इन शुल्कों से प्राप्त धन राशि राज्यों को दी जायेगी। अनुच्छेद 269 के अधीन उत्तराधिकार विषयक शुल्क, सम्पत्ति विषयक शुल्क आदि को राज्यों की ओर से केन्द्र आरोपित करेगा और केन्द्र ही संग्रह भी करेगा। अनुच्छेद 270 आयकर के सम्बन्ध में है। माननीय सदस्यों को यह विदित है कि आयकर की राशि सीधे-सीधे उस धनराशि में सम्मिलित कर दी जाती है जो राज्यों और केन्द्र के बीच वितरित होती है। अनुच्छेद 271 द्वारा केन्द्र को अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिये आयकर पर, तथा अन्य करों पर, अधिकार आरोपित करने की शक्ति प्रदान की गई है। अनुच्छेद 272 के अधीन संघ को उत्पादन-शुल्क आरोपित करने की शक्ति प्रदान की गई है और उसमें यह कहा गया है कि उसकी पूरी राशि, अथवा उसका कोई भाग, राज्यों के बीच वितरित किया जायेगा। अनुच्छेद 273 में पटसन या पटसन से बनी हुई वस्तुओं पर निर्यात-शुल्क का उल्लेख है और उसमें यह कहा गया है कि उसकी धनराशि दस वर्ष तक कुछ राज्यों के बीच वितरित की जायेगी। अनुच्छेद 280 वित्त आयोग के सम्बन्ध में है, जो करों के आगम को केन्द्र और एककों के बीच वितरित करने के सम्बन्ध में और केन्द्र द्वारा प्रान्तों को दिये जाने वाले अनुदानों को प्रदान करने की कसौटी के बारे में केन्द्र को मंत्रणा देगा। हमारे सामने जो तथ्य थे उन्हें ध्यान में रखते हुए हम संविधान में जो अच्छे से अच्छे उपबन्ध रख सकते थे वे यही हैं। मैं यह स्वीकार करता हूं कि यदि इस संविधान के अन्तिम उद्देश्य को पूरा करना है, अर्थात् यदि जनसाधारण की आर्थिक स्थिति को सुधारना है, तो वित्तीय साधनों से प्राप्त होने वाली केन्द्र की तथा एककों की राशि को बढ़ाना होगा। किन्तु इसका उपाय यह नहीं है कि केन्द्र पर अथवा इस संविधान पर

पत्थर मारे जायें और अपनी जिम्मेदारी न समझी जाये तथा प्रान्तीय मंत्री यह कहें कि कर लगाने की पूरी शक्ति केन्द्र को ही प्राप्त है और हमें यह शक्ति बिल्कुल भी प्राप्त नहीं है। मैं इस सभा के अपने माननीय मित्रों को बताना चाहता हूं कि अनेक संविधानों को देखने से यह विदित होता है कि कर लगाने की शक्ति केन्द्र को ही दी जाने लगी है और इस प्रकार स्थिति-वश संघात्मक अथवा एकात्मक राज्य पुलिस राज्य न होकर कल्याणकारी राज्य हो गये हैं। देश के आर्थिक कल्याण की जिम्मेदारी अब अन्ततोगत्वा केन्द्र की ही हो गई है। स्विटजरलैंड ने आयकर को केन्द्र को सौंप दिया है। अमरीका के संविधान के सोलहवें संशोधन द्वारा आयकर की पूरी राशि राष्ट्रीय सरकार को सौंप दी गई और उस पर उस राशि को राज्यों के बीच वितरित करने का कोई भार नहीं है। एक विधि द्वारा आस्ट्रेलिया की केन्द्रीय सरकार ने कर लगाने की शक्ति राज्यों से ले ली है। कनाडा के डोमीनियन तथा प्रान्तों के सम्बन्ध में रावेल-सरवोई प्रतिवेदन में यह सिफारिश की गई है कि आयकर लगाने की शक्ति प्रान्तों के पास बिल्कुल भी न रहने दी जाये। साथ ही उस प्रतिवेदन में यह भी कहा गया है कि केन्द्र को इस व्यवस्था के अधीन कुछ कर्तव्यों का पालन करना पड़ेगा और कुछ आभारों को स्वीकार करना पड़ेगा। इसे स्वीकार किया गया है कि यदि सरकार को कुछ कृत्यों का निर्वहन करना पड़ेगा तो उसे राजस्व संगृहीत करने की शक्ति भी प्राप्त होनी चाहिये। यदि आज हम उत्पादन-शुल्क संगह करने की शक्ति एककों को दे देते हैं तो क्या होगा? विक्रय कर के सम्बन्ध में जो कुछ होता है उससे भी कहीं दुष्कर बातें इस शुल्क के सम्बन्ध में होंगी। एकरुपता नहीं रह जायेगी तथा इस शुल्क से बचने की बहुत गुंजाइश निकल आयेगी। इसका परिणाम यह होगा कि सारे देश की व्यवस्था को क्षति पहुंचेगी। यदि केन्द्र की आवश्यकताएं पूरी होने के पश्चात केन्द्र द्वारा संगृहीत धन में से अवशेष धन राज्यों को अर्थात् एककों को दे दिया जाता है और इस सम्बन्ध में हमने संविधान में उपबन्ध रखे हैं तो मेरे विचार से यह आरोप कि केन्द्र ने सभी वित्तीय शक्तियों को ले लिया है और सारे धन को भी ले लिया है, निराधार प्रमाणित हो जाता है।

एक अन्य विषय को उठाने के पूर्व मैं एक बात और कहना चाहता हूं। यद्यपि इस सम्बन्ध में मैंने कई अन्य बातों को भी लिख रखा है किन्तु इस समय मैं उन्हें नहीं उठा सकूंगा। मैं इस समय केवल उस जटिल प्रश्न की चर्चा करूंगा जिसे मेरे माननीय मित्र श्री गुप्ते ने उठाया था और मेरे विचार से, वह इस सभा में, भले ही स्पष्ट शब्दों में न हो किन्तु कई अवसरों पर उठाया अवश्य गया था। यह कहा गया है कि इस संविधान के मुख्य दोषों में से एक दोष यह है कि हमने इसका कहीं भी उल्लेख नहीं किया है कि राष्ट्रपति एक संविधानिक प्रधान है और इस कारण यह कहा नहीं जा सकता कि भविष्य में राष्ट्रपति की शक्तियों का क्या होगा। मैं इस प्रश्न को केवल इसलिये उठा रहा हूं कि यह प्रश्न इस दृष्टि से एक सारवान प्रश्न है कि ब्रिटिश साम्राज्य के कुछ डोमीनियनों में गवर्नर जनरलों के विशेष रूप से कार्य करने के कारण यह प्रश्न उठाया गया है। आस्ट्रेलिया के विदेश मंत्री तथा भूतपूर्व मुख्य न्यायाधिपति, मि. इबाट ने एक पुस्तक लिखी है जिसमें उन्होंने लिखा है कि डोमीनियन के संविधानिक प्रधान के

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

रूप में गवर्नर जनरल द्वारा शक्ति प्रयोग के सम्बन्ध में स्पष्ट उपबन्ध होने चाहिये। आनुषंगिक रूप से वह यह भी लिखते हैं कि इंगलिस्तान के सम्राट के सम्बन्ध में भी यह कहा जा सकता है कि अच्छा यह होता कि इसका किसी विधि में उल्लेख होता कि वह अमुक शक्ति को अमुक अवसरों पर अमुक प्रकार प्रयोग कर सकेगा। मसौदा समिति ने इस प्रश्न की कुछ हद तक परीक्षा की है। उत्तरदायी शासन में राष्ट्रपति की वह स्थति नहीं होती जो अमरीका के समान प्रतिनिधि शासन में उसकी होती है। इस सभा के कई सदस्यों ने जब यह कहा कि राष्ट्रपति तानाशाह हो जायेगा तो उन्होंने गलती की, क्योंकि उन्होंने यह नहीं समझा कि राष्ट्रपति को प्रधान मंत्री से मन्त्रणा लेकर कार्य करना होगा। इस आरोप में कुछ तथ्य है कि प्रधान मंत्री तानाशाह हो सकता है। यदि वह दल जिसने प्रधान मंत्री को निर्वाचित किया जो, तथा वह संसद जिसके प्रति वह उत्तरदाई हो, अकर्मण्य हो जायें तो वह अवश्य ही तानाशाह हो जायेगा। साथ ही प्रधान मंत्री उसी अवधि तक पदारूढ़ रह सकता है जब तक कि उसके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित न किया जाये। जब प्रधान मंत्री की पदावधि इतनी अल्प हो सकती है तो, जब तक कोई अन्य कारण न हो जिन के फलस्वरूप वह संसद पर तथा अपने दल पर अपना प्रभुत्व स्थापित न करे, मेरी समझ में नही आता कि वह तानाशाह कैसे हो जायेगा। जहां तक राष्ट्रपति और मंत्रिमंडल के सम्बन्धों का प्रश्न है, मैं यह कहूंगा कि इस सम्बन्ध में हमने उस उत्तरदाई शासन की प्रणाली को अपनाया है जो इस समय इंगलिस्तान में चलन में है। हमने उसमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया है और यदि कोई किया है तो इस कारण किया है कि हमारा संविधान संघात्मक है। अन्यथा केन्द्र के लिये, तथा एककों के लिये, हमने उत्तरदाई शासन की उसी प्रणाली को स्वीकार किया है। एककों में मंत्रियों के उत्तदायित्व को बहुत थोड़े अंश में कम किया गया है और केवल उसी सीमा तक कम किया गया है जिस सीमा तक कम करने की बहुत आवश्यकता है और जिस सीमा तक कम करने के बारे में संविधान में स्पष्ट उल्लेख है। माननीय सदस्य कृपा करके अनुच्छेद 163 को देखें, जिसमें हमने कहा है कि जिन बातों में राज्यपाल से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने कृत्यों को स्वविवेक से करे उन बातों को छोड़कर राज्यपाल अपने कृत्यों का निर्वहन मंत्रियों से मंत्रणा लेकर करेगा। एक माननीय सदस्य ने आज मुझसे पूछा कि इसका अर्थ क्या है। अनुसूची 6 के आसाम-विषयक पैरा 9 और 18 के कारण ही इसकी आवश्यकता पड़ी थी क्योंकि उनमें उल्लिखित विषय के सम्बन्ध में ही राज्यपाल को स्वविवेक से कार्य करना होगा। षष्ठ अनुसूची के नवें पैरा में एक ऐसे विषय का उल्लेख है जो राज्यपाल को निर्धारण के लिये सौंपा जायेगा और उस अनुसूची के अठारहवें पैरा में उसे राष्ट्रपति के पास प्रतिवेदन भेजना होगा। इन उपबन्धों के अतिरिक्त अन्य किसी उपबन्ध द्वारा राज्यपाल को स्वविवेक से निर्णय करने की शक्ति नहीं दी गई है। हमने यह कहा है कि सभी नियमों के सम्बन्ध में राज्यपाल इस प्रकार कार्य करे कि यह समझा जाये कि वह मंत्रियों से मंत्रणा लेकर ही कार्य कर रहा है। विधेयकों के सम्बन्ध में अनुमति देने के बारे में, जब उसे राष्ट्रपति के पास उन्हें अनुमति के लिये भेजने के उद्देश्य से अनुमती नहीं देनी होगी, और वह इस प्रकार कि

विधेयक का विषय समवर्ती सूची का विषय है अथवा उच्च न्यायालयों का विषय है, इसका स्पष्ट शब्दों में उल्लेख किया गया है। किन्तु राष्ट्रपति की स्थिति वह नहीं है जो इंग्लिस्तान के सम्राट की है, और वह इस कारण कि उसे वह विशेषाधिकार प्राप्त नहीं हैं जो इंग्लिस्तान के सम्राट को प्राप्त है। विधेयकों के सम्बन्ध में अनुमति देने के बारे में राष्ट्रपति क्या कर सकता है इसकी परिभाषा की गई है। जो शक्तियां उसे प्रदान की गई हैं उन्हें सम्भवतः वह स्वविवेक से बहुत कम प्रयोग कर सकेगा और यदि प्रयोग कर सकेगा तो उस अवस्था में जब संसद का, अर्थात् लोक सभा का, विघटन होगा और मंत्रिमंडल को विघटित करने तथा किसी व्यक्ति से मंत्रि-मंडल बनाने के लिये आमंत्रित करने का प्रश्न उठेगा। श्रीमान, मेरे पास बहुत कम समय है किन्तु मैं अपने माननीय मित्रों को आश्वासन देता हूं कि इंग्लिस्तान के सम्राट की शक्तियों के सम्बन्ध में, तथा मंत्रिमंडल से उसके सम्बन्धों के बारे में जो प्रथाएं बन गई हैं वे बहुत ही ठोस प्रथाएं हैं और यह निवेदन करता हूं कि उनका अनुकरण करके हम संतोष कर सकते हैं। साथ ही मैं यह आश्वासन देता हूं कि राष्ट्रपति को परोक्ष रूप से जो शक्तियां प्राप्त हैं उनका दुरुपयोग नहीं किया जायेगा। इंग्लिस्तान के प्रधानमंत्री की शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती रही है। यदि सम्राट ने स्वविवेक से कभी कदम उठाया तो उसी सीमा तक उठाया जिस सीमा तक उसे परोक्ष शक्ति प्राप्त है। 1924 में प्रधानमंत्री मैकडोनेल्ड ने कामन्स सभा को विघटित करने के लिये जो सुझाव प्रस्तुत किया था उससे वहां के सम्राट सहमत हो गये और 1931 में उन्होंने मैकडोनेल्ड से मंत्रिमंडल बनाने के लिये कहा, यद्यपि जिस दल का वह सदस्य था उसने विरोधी दल का रूप धारण कर लिया था। इसके बाद के भी कई उदाहरण हैं। वहां प्रधान मंत्री ने एक बार यह विचार प्रकट किया था कि चूंकि सम्राट एक विशेष कार्य करने जा रहा है इसलिये अब उसे गद्दी छोड़ देनी चाहिये। उसने गद्दी छोड़ दी। बाद में भी अपनी एवज में काम करने के लिये परामर्शदाताओं का एक अस्थाई आयोग स्थापित करने के उद्देश्य से उसे प्रधान मंत्री से मंत्रणा लेनी पड़ी। इंग्लिस्तान की इन बातों से, तथा अन्य बातों से, बहुत कुछ यह प्रमाणित होता है कि सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रधान मंत्री की मंत्रणा है और वास्तव में सम्राट परामर्श के लिये यदि किसी अन्य व्यक्ति को बुला सकता है तो वह केवल विरोधी दल का नेता हैं। इस दशा में भी उसे प्रधान मंत्री को बताना होता है कि उनके बीच क्या बातचीत हुई। इस सम्बन्ध में काफी ठोस और सुस्थापित प्रथाएं है, किन्तु उनके अतिरिक्त भी कोई मामला उठ खड़ा हो सकता है। इसलिये हम संविधान में इसका उल्लेख नहीं कर सकते कि किस अवसर पर राष्ट्रपति को कौन-सा कदम उठाना चाहिए और प्रधान मंत्री को उससे कौन-सा कदम उठाने के लिये कहना चाहिये तथा किन कठिन मामलों के सम्बन्ध में उसे स्वविवेक से कदम उठाना चाहिये। हो सकता है कि स्थिति को ठीक-ठीक समझने में गलती की जाये और गलत कदम उठाया जाये, अथवा यह भी सम्भव है कि उस कदम को उठाने के अतिरिक्त और कोई चारा ही न हो। हमने इस विषय पर विचार

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

किया और पूर्ण विचार करने के पश्चात् इस निर्णय पर पहुंचे कि इस सम्बन्ध में हमें उन देशों के समान प्रथाएं स्थापित होने देनी चाहिये जहां उत्तरदाई शासन का अनुसरण किया जा रहा है।

श्रीमान, क्या मुझे दोपहर के पश्चात् पन्द्रह मिनट दिये जा सकते हैं?

***अध्यक्ष:** जी हां, अब हम तीन बजे तक के लिये सभा स्थगित करते हैं।

*इसके पश्चात् सभा दोपहर के भोजन के लिये तीन बजे तक के लिये स्थगित हो गई।*

---

*दोपहर के भोजन के पश्चात् सभा तीन बजे माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में पुन: समवेत हुई।*

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय, मैं उन प्रश्नों को लेना चाहूंगा जो माननीय सदस्यों द्वारा मूलाधिकारों के सम्बन्ध में उठाये गये थे। इस भाग के कई उपबन्धों से माननीय सदस्य सहमत हैं। परन्तु दो प्रकार के उपबन्धों पर आपत्ति की गई है। एक वे जो व्यक्तिगत रूप में नागरिक के स्वातन्त्र्य के सम्बन्ध में हैं और दूसरे वे जो सम्पत्ति के सम्बन्ध में है। श्रीमान यह विषय विवादास्पद है कि वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित संसद् युक्त देश में जहां यह समझा जाता है कि जन साधारण का देश के प्रशासन में और विधियों के निर्माण करने में प्रभावशाली हाथ है वहां क्या यह आवश्यक है कि इस प्रकार के मूलाधिकार रखें जायें जो इस संविधान में रखे गये हैं। मेरी माननीया मित्र श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी ने कहा था कि यदि मूलाधिकारों में बिना किसी प्रकार की कमी किये उनको उसी रूप में रहने दिया जाता जिस रूप में वे अमरीका के संविधान में पाये जाते हैं तो वे इस बात को अधिक पसन्द करतीं। मुझे फिर यह कहना पड़ेगा कि जो मित्र अमरीका के संविधान में से नकल किये गये मूलाधिकारों को चाहते थे विशेषकर उन मूलाधिकारों को जो वैयक्तिक स्वातन्त्र्य से सम्बन्ध रखते हैं वे इन मूलाधिकारों के अमरीका के संविधान में रखे जाने के ऐतिहासिक आधार को भूल गये। ये मूलाधिकार केवल एक उस सम्प्रदाय के भय के कारण रखे गये थे जिसने संविधान बनाया और जिसने यह समझा कि नव-निर्मित केन्द्र एक हौआ बन जायेगा और वह केवल राज्यों के अधिकारों पर नहीं वरन् व्यक्ति के अधिकारों पर भी आक्रमण करेगा—एक शक्तिशाली राष्ट्रीय सरकार के प्रति इन लोगों की स्वभाविक घृणा ही इसका मुख्य कारण थी और ये लोग जेफरसन जैसी बुद्धि वाले व्यक्ति थे और इन्हीं पर अमरीका के संविधान में इन मूलाधिकारों के रखने का उत्तरदायित्व था। पर जिस संविधान को 1949 ई. में हम बना रहे हैं उसमें इन उपबन्धों को बिना किसी परिवर्तन, संशोधन या कमी के रखना ठीक नहीं होगा।

मुझे आर्थिक विषय सम्बन्धी उपबन्ध को विशेषकर अनुच्छेद 31 को लेने दीजिये। जैसा कि मैंने आरम्भ में बताया था मेरी माननीया मित्र बेगम ऐजाज रसूल

ने कहा था कि इन उपबन्धों की पहुंच बहुत दूर तक नहीं है। मैं इस बात से सहमत हूं, मेरे विचार से वे बिल्कुल ठीक कहती हैं। मूलाधिकार केवल उन लोगों के लिये है जो एक विशिष्ट वर्ग का प्रतिनिधान करते हैं जिनको बहुधा रूढ़गत स्वार्थ कहा जाता है। रूढ़गत स्वार्थ ही वयस्क मताधिकार द्वारा निर्वाचित उस भावी संसद से भयभीत है जो देश में सम्पत्ति तथा अवसरों का लोकतंत्रीकरण, समाजीकरण और समविभाजन करना चाहेगा। रूढ़गत स्वार्थ को ही भविष्य से डरना होगा। यह बात बिल्कुल ठीक है यद्यपि बेगम ऐजाज रसूल की यह शिकायत सम्भव है उचित आधार पर न हो कि सम्पत्ति सम्बन्धी मूलाधिकारों की पहुंच दूर तक नहीं है।

इसके विपरीत यहां मेरे कई मित्रों ने जिनमें मेरी माननीया मित्र श्रीमती रेणुका रे भी सम्मिलित है यह अनुभव किया कि सम्पत्ति स्वामियों को अनुच्छेद 31 में जो अधिकार दिये गये हैं वे अधिक है।

***एक माननीय सदस्य:** बहुत अधिक।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** जिन लोगों ने यह प्रवृत्ति ग्रहण की उनकी विचारधारा यह होनी चाहिये कि एक ऐसे संविधान में मूलाधिकारों का परित्राण करना आवश्यक नहीं है जिसमें कि वयस्क मताधिकार को प्राधान्य है, जिसमें संसद का निर्वाचन देश के प्रत्येक प्रौढ़ नागरिक द्वारा किया जायेगा। यह निष्कर्ष स्वभाविक ही है। इस विषय के औचित्य पर मुझे कुछ थोड़ा और कहना है।

मैं यह चाहता हूं कि सभा यह समझ ले कि मूलाधिकारों पर विचार करते समय लोगों के मन में दो विरोधी धारणायें उत्पन्न होती हैं: एक यह कि मूलाधिकारों का क्षेत्र विस्तृत हो गया है और दूसरी यह है कि मूलाधिकारों का क्षेत्र विस्तृत नहीं है। मुझे अपने माननीय मित्र पंडित कुंजरू ओर पंडित ठाकुर दास भार्गव के विचार को लेने दीजिये जिनकी अनुच्छेद 19, 21 और 22 तथा कुछ अन्य अनुच्छेदों पर भी यह आपत्ति है कि व्यक्ति को जो अधिकार दिये गये हैं उनमें कमी कर दी गई है। ठीक है, मैं यह कहूंगा कि विशुद्ध औचित्य के आधार पर और हमारे चारों तरफ इस समय जो कुछ हो रहा है और पहले जो कुछ हुआ है उसके आधार पर मैं पूर्ण रूप से उनसे सहानुभूति रखता हूं। स्वतंत्रता की इच्छा और अंग्रेज़ी शासन से घृणा के फलस्वरूप हम सबने राजनीति में इस कारण पदार्पण किया कि हम व्यक्ति के अधिकारों से संयुक्त स्वतंत्रतावादी परम्पराओं से आकर्षित हुये थे। उस समय जब कि एक विदेशी शासक हम पर शासन कर रहा था हम इन अधिकारों की रक्षा चाहते थे। परन्तु आज इन अधिकारों में यदि कुछ कमी की जाती है तो वह कमी संसद द्वारा तथा राज्यों के विधान मंडलों द्वारा की जायेगी; सच पूछो तो अन्तिम रूप में संसद को ही यह शक्ति होगी क्योंकि अधिकांश विषय जिनके अन्तर्गत व्यक्तिगत स्वातंत्र्य आता है समवर्ती सूची में हैं और इन विषयों में संसद के अधिनियमों की ही प्रधानता रहेगी। यदि संसद के किसी विधान पारित करने पर आपत्ति की जाती है तो इसका यह अर्थ

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

है कि जिस संसद का निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर होगा उस संसद के प्रति कुछ मात्रा में विश्वास का अभाव है। यह तर्क चाहे विवेक हीन प्रतीत हो पर है यह कटु सत्य। मेरे माननीय मित्र इन दो बातों में से एक को अपना सकते हैं। हमने जो कुछ किया है वह केवल यह है कि प्रस्तावना रख दी है और यह कह दिया है कि यदि संसद ऐसा चाहती है तो जिस सीमा तक (क), (ख), (ग), (घ) और (ङ) प्रस्तावनाओं में अधिकार दिये गये हैं उनमें वह कमी कर सकती है। यदि संसद कमी करना नहीं चाहती है तो वह न करे और जिन मूलाधिकारों का वर्णन वहां किया गया है वे बिना किसी कमी के बने रहेंगे। प्रत्येक अधिकार के लिये विधियां अधिनियमित करते हुये संसद किसी निश्चित अधिनियम द्वारा ही कमी कर सकती है। माननीय सदस्यों को मैं इसी बात को समझाना चाहता हूं। जो लोग संविधान की इस आधार पर आलोचना करते हैं कि जो मूलाधिकार दिये गये हैं वे व्यर्थ हैं क्योंकि उनमें कमी कर दी गई है मैं यह चाहता हूं कि वे लोग इस बात को समझें कि संसद द्वारा ही इनमें कमी की जा सकती है और यदि संसद में उनका कुछ विश्वास है तो जब तक ऐसा करना नितान्त आवश्यक नहीं होगा तब तक संसद ऐसा नहीं करेगी। मैं इस बात से सहमत हूं कि वर्तमान परिस्थितियों के कारण हमारी निगाह बदल जाती है और इनकी ओर हम इस प्रकार के देखने लगते हैं कि नक्शा बदरंग दिखाई देने लगता हैं। किसी प्रान्त की विधि और व्यवस्था का उत्तरदायित्व मुझ पर नहीं रहा; मुझे शक्ति नहीं मिली है अत: अपने उन मित्रों से सहानुभूति रखना मेरे लिये सरल कार्य है जो यह समझते हैं कि यद्यपि अंग्रेज चले गये हैं पर उनका चोला अभी तक यहां लटक रहा है। जो नागरिक सरकार की आलोचना करते हैं उनका प्रभाव हम पर पड़ता है। इसका प्रभाव उन लोगों पर भी पड़ता है जिनके हाथ में शासन है क्योंकि उन्होंने हमारे पूर्ववर्ती शासकों की परम्पराओं को अपनाया है। मेरे माननीय मित्र पंडित ठाकुदास भार्गव और पंडित कुंजरू ने इस आधार पर आपत्ति की थी कि वर्तमान समय में ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ मात्रा में प्राधिकार का दुरुपयोग या कदाचित् प्राधिकार का अतिरिक्त उपयोग हुआ है। मैं कभी भी इन आपतियों की मान्यता पर आपत्ति नहीं करता हूं। पर मैं यह नहीं समझता हूं कि यह एक ऐसी बात हो जो सदा बनी रहेगी। जो कुछ भी हो यदि भावी संसद व्यक्ति के स्वातन्त्र्य की सुरक्षा नहीं करेगी तो मैं नहीं समझता हूं कि संविधान में किसी भी बात के रखने से उसकी सुरक्षा हो सकेगी। अत: संविधान में मूलाधिकारों का पूर्णतया अन्यून रूप में रखने का आग्रह तथा एक ऐसे रूप में रखने का आग्रह जिसमें वे किसी ऐसे देश में 160 वर्ष पूर्व रखे गये थे जिसके आदर्श विभिन्न थे और जिसकी आशायें भिन्न थी, एक ऐसा तर्क है जो विषय से असंगत है और उसके लिये यह स्थल उपयुक्त नहीं है।

आर्थिक उपबन्धों के सम्बन्ध में कुछ शब्द और कहना चाहूंगा। श्रीमती रेणुका रे तथा अन्य मित्रों ने जो आपत्तियां उठाई हैं उनकी मान्यता से में पूर्णतया सहमत

हूं। यह सच है कि इन आपतियों के प्रति मुझे बहुत कुछ सहानुभूति है यद्यपि मैंने सदैव यह अनुभव किया है कि जिस रूप में इस समय ये उपबन्ध हैं—वे उपबन्ध, जो भारत शासन अधिनियम की धारा 299 के मूल रूप में उपबन्ध थे, संसद या राज्य के विधान-मंडल द्वारा प्रतिकर के सिद्धान्त के सम्बन्ध में बनाये गये किसी विधान की न्यायालय में ले जाने की और तत्पश्चात् उनके सम्बन्ध में निर्णय किये जाने की अनुज्ञा नहीं देते थे। पर मुझे यह क्यों प्रतीत होता है कि जिन माननीय मित्रों ने इन उपबन्धों की आलोचना की है वे ठीक है, इसलिये कि इस उपरोक्त विचार के रखते हुए भी तथा इस तथ्य के होते हुए भी, कि लगभग डेढ़ वर्ष पूर्व मेरे विद्धान सहयोगी अल्लादि कृष्णास्वामी ऐयर विरोधी विचार रखते थे और अब यह विचार रखते हैं कि वे सिद्धान्त न्याय्य नहीं हैं, मैं यह देखता हूं कि इस विषय को न्यायालय में ले जाने की संभावना है और मेरा विचार यह है कि इस देश में हम उन विषयों को, जो बड़े आर्थिक महत्व के हैं और देश की साधारण जनता के लिये महत्वपूर्ण हैं, न्यायालय में ले जाना बर्दाशत नहीं कर सकते हैं और वह भी एक अनिश्चित अवधि के लिये।

परन्तु जिस रीति से इस संविधान की रूपरेखा उठाई गई थी उसके मैं एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग पर आता हूं। माननीय सदस्यों ने अनुभव किया होगा कि यह संविधान मेरे समक्ष समझौते का परिणाम स्वरूप है जैसाकि अन्य सदस्यों ने इसका वर्णन किया है। 206 व्यक्ति जो यहां एकत्रित हुये हैं आर्थिक विषयों पर भिन्न-भिन्न मत रखते हैं और यदि मैं यह कहूं कि किसी खास बात को मैं नहीं होने दूंगा। और अन्य लोगों को मेरी बात माननी चाहिये तो कोई बात तय नहीं होगी और हम संविधान नहीं बना सकते हैं। लगभग यह सारा का सारा संविधान—विशेषकर इस संविधान के बहुत ही महत्वपूर्ण भाग तत्सम्बन्धी पक्षों में परस्पर किये गये अन्तिम समझौते के विषय हैं और यदि कुछ व्यक्ति अधिकांश प्रस्थापनाओं से सहमत होकर किसी एक प्रस्थापना पर आपति करते हैं तो वे एक ऐसा कार्य करते हैं जो ठीक नहीं है। इस संविधान को हममें से अधिकांश लोगों में परस्पर किये गये समझौते के रूप में पूरा किया गया है। मैं समझता हूं कि इस विशिष्ट विषय में हमने जन-साधारण को मुकदमेबाजी के अधीन कर दिया है और संभव है कि इसका निर्णय करने में एक वर्ष लग जाये और इस के कारण हमारी आर्थिक उन्नति में अवनति हो। मैंने यह इस लिये मान लिया कि इस संविधान में बहुत सी ऐसी बातें हैं जो उन मित्रों ने मान ली हैं जिनके उस विषय में विरोधी विचार थे। श्रीमान, मेरी उन माननीय मित्रों के मार्ग में रुकावट डालने की इच्छा नहीं है जो कुछ मिनट के लिये अपना भाषण देना चाहते हैं।

***श्री पी.टी. चक्को** (तिरुवांकुर: राज्य): क्या मैं एक बात जान सकता हूं? भाग 7 में राजप्रमुख की नियुक्ति के लिये कोई उपबन्ध नहीं है। धारा 155 में राज्यपाल की नियुक्ति के लिये उपबन्ध है जिसको भाग 7 में अपमार्जित कर

[श्री पी.टी. चक्को]

दिया गया है और कुछ राज्यों में राज्य प्रमुखों को उत्तराधिकार नहीं है मैं यह जानना चाहूंगा कि जहां उत्तराधिकार नहीं है वहां क्या राज-प्रमुख की नियुक्ति के लिये उपबन्ध आवश्यक नहीं है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं अपने माननीय मित्र से अनुच्छेद 366 के खंड (21) को पढ़ने के लिये कहूंगा जिसमें इसका उत्तर दिया गया है। मैं इस विषय को लेना चाहता था पर मैं समझता हूं कि मेरे पास समय नहीं है। श्री सरवटे ने एक ऐसे राजप्रमुख की स्थिति के सम्बन्ध में प्रश्न उठाया है जो दुर्व्यवहार करता है और जिसके लिये उन्होंने समझा कि कोई उपबन्ध नहीं है जब कि राज्यपाल द्वारा किये गये दुर्व्यवहार के लिये हमारे यहां उपबन्ध है। मैं समझता हूं कि जो विशेष खंड वहां दिया हुआ है अर्थात् अनुच्छेद 366 का खण्ड (21) राजप्रमुखों के व्यवहार को ठीक रखने के लिये सब प्रकार से पर्याप्त है। एक प्रश्न और है जिसको मेरे उन माननीय मित्र ने उठाया था जिन्होंने मुझ से उसक बारे में अनुच्छेद 371 के सम्बन्ध में भी कहा था, विशेषकर राज्यों में उच्च-न्यायालयों के न्यायाधीशों के सम्बन्ध में अनुच्छेद 371 जिस रूप में उसको यहां अन्य मित्रों ने मान लिया है और श्री मालवीय, जिन्होंने कल भाषण दिया था, इसके पक्ष में थे कि यह विशुद्ध रूप में एक अन्तर्कालीन उपबन्ध है और इसे आपको तत्कालीन सरकार पर छोड़ देना चाहिये कि वह इस बात को देखें कि इसका प्रवर्तन उन राज्यों में न हो जो उन्नत है और जहां तक राज्यों में के उच्च-न्यायालयों के न्यायाधीशों के वेतन का सम्बन्ध है भाग-क के राज्यों के उच्च-न्यायालयों के न्यायाधीशों के वेतन ऊंचे हैं और यदि हम राज्यों में वेतन के इसी स्तर का आरोप करें तो राज्यों का दिवाला निकल जायेगा। कुछ असंगतियों का पैदा होना अनिवार्य है क्योंकि हमने देशी रियासतों और प्रान्तों को साथ-साथ रख दिया है; और यदि हम उनको साथ-साथ न रखते तो हम एक ऐसा संविधान बनाते जो एकरूप नहीं होता। हमारे कुछ माननीय मित्रों ने यह विषय उठाया है पर हमारे सामने परिसीमायें हैं और इन परिसीमाओं के अधीन हमने एकरूपता लाने का प्रयास किया है।

समाप्त करने के पूर्व मैं एक विषय का जिक्र करना चाहूंगा जो मेरे विचार मेरे खेदनीय है और मैं समझता हूं कि सभा मुझ से इस विषय में सहमत होगी। मेरे माननीय मित्र और सहयोगी श्री के.एम. मुंशी वादविवाद की अन्तिम स्थिति में भाग लेने के लिये बड़े उत्सुक थे। मैं समझता हूं कि कि शक्ति पार्थक्य संविधान का प्रकार इत्यादि विषयों पर जो आलोचनायें की गई हैं। इन पर भी उन्हें कुछ रचनात्मक बातें कहनी थीं, पर दुर्भाग्यवश उनको हरारत हो गई और गले में तकलीफ हो गई जिसके कारण वे बिस्तर में पड़ गये। इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस सभा के सदस्य जो उन्हें उतना ही चाहते हैं जितना मैं, उनके शीघ्र स्वस्थ हो जाने की कामना करेंगे और इस बात पर खेद प्रकट करेंगे कि वे आज हमारे साथ नहीं हैं जब कि उस कार्य को हम अन्तिम रूप दे रहे हैं जिसको हम

तीन वर्ष से अधिक समय से करते चले आ रहे हैं और जिसमें श्री के.एम. मुंशी ने बड़ा ही महत्वपूर्ण भाग लिया है।

श्रीमान अन्त में मैं उस आभार का वर्णन करता हूं जिससे हमें विशेषकर भारत सरकार के मंत्रालयों के प्रति मसौदा समिति के रूप में उऋण होना है वित्त मंत्रालय, बाह्य विषयक मंत्रालय तथा गृह मंत्रालय ने हमारे साथ बड़ा नेक व्यवहार किया और हमको पर्याप्त सहायता दी। राज्य मंत्रालय के सम्बन्ध में हम श्री वी.पी. मेनन और उनके सहायकों के आभारी हैं कि उन्होंने देशी रियासतों को एकीकरण करके इस संविधान में रखा और वे हमारे बड़े सहायक रहे। जहां तक विधि सम्बन्धी मंत्रालय का सम्बन्ध है मैं दो व्यक्तियों सचिव और संयुक्त सचिव के नाम लेकर उल्लेख करना चाहूंगा—श्री सुन्दरम और श्री भंडारकर जो हमारे लिये बड़े उपयोगी सिद्ध हुये यहां तक कि अन्त में यह संविधान उन्हीं को सौंपा जायेगा। अतः यह ठीक ही है कि वे इस प्रकार की सहायता करते, पर मैं समझता हूं कि मैं अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करूंगा यदि मैं जो महान सेवायें उन्होंने हमें अर्पित की हैं उनके प्रति उनका नाम लेकर उल्लेख न करूं। श्री बी.एन. राउ के सम्बन्ध में जो कुछ सदस्यों ने कहा है कि उससे मैं अपनी सहमति प्रकट करना चाहूंगा। अन्तिम स्थिति में हम उनकी सहायता से वंचित रहे, पर उनकी सहायता से वंचित रहने पर भी हम उनकी उस महान सहायता से परिचित थे जो हमें इस कार्य के आरम्भ में प्राप्त हुई थी और उनके विचार इतने प्रगतिशील थे वे इतने सहानुभूति पूर्ण थे, इतने शीघ्र विचारक थे कि जब हमारे सामने कठिनाई आती थी तो वे तुरन्त ही उसको दूर करने का सूत्र खोज लेते थे। श्रीमान, मैं फिर अपने कर्त्तव्य से विमुख हो जाऊंगा। यदि मैं उस सुखद संयोग का वर्णन न करूं जिसका वर्णन माननीय मित्रों ने किया है वह यह कि हमें श्री एस.एन. मुकर्जी जैसा योग्य संयुक्त सचिव तथा मसौदा लेखक मिला। यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि हमें वे वास्तव में एक अमूल्य रत्न के रूप में मिले। केवल मसौदा लेखक के रूप में ही उनकी योग्यता इतनी परिपूर्ण न थी वरन् इससे भी महानतर उनमें कार्य करने की लगन थी (*हर्षध्वनि*) और सभा यह भी चाहेगी कि यह कहा जाये कि लगभग प्रत्येक व्यक्ति श्री खन्ना से लेकर नीचे बाबुओं, अधीक्षकों तथा प्रतिवेदकों तक को कठिन परिश्रम करना पड़ा। अन्तिम आठ या दस महीनों तक मसौदा समिति के कार्य से निकट सम्पर्क रखने के कारण और उसके यांत्रिक कार्य को स्वेच्छा से ले लेने के कारण मैं यह देख सका कि ये नवयुवक अधिकांश रात के दस बजे तक कार्य करते रहते थे केवल इस कारण कि वे उत्साह से ओत प्रोत थे और अन्तिम मास तो उनके लिये घोर परिश्रम का मास था और मैं आशा करता हूं कि इस संविधान को बनाने में जो कार्य उन्होंने किया है उसे यह सभा अभिज्ञात करेगी और वह कार्य बहुत ही प्रमुख तथा महत्वपूर्ण था।

श्रीमान, मेरे लिये यह बात असंगत होगी यदि मैं दो महान नेताओं की सेवाओं का उल्लेख न करूं और यह दुख की बात है कि आज कुछ चन्द शब्द कहने

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

के लिये वे यहां उपस्थित नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि प्रधान मंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू से हमें बड़ी शक्ति और सहायता मिली। उन्होंने वास्तव में, इस संविधान और उसके विभिन्न अनुच्छेदों को आरम्भ से ही समझा और कई बार एक मसौदा लेखक तथा लेखक के रूप में हमें उनकी महान योग्यताओं का परिचय मिला जब कि उन्होंने सभा के समक्ष रखे गये विशिष्ट अनुच्छेदों की भाषा में सुधार किये। निस्सन्देह यह दुर्भायपूर्ण बात थी कि हमारे इस कार्य के आरम्भ में बीमार होने के कारण माननीय सरदार पटेल हमारा साथ न दे सके पर अन्तिम तीन या चार माह में हमें कई बार उनकी मंत्रणा लेने के लिये जाना पड़ा और उन्होंने बड़े प्रेम और हर्षपूर्वक अपनी मंत्रणा दी। आखिर ये लोग इस संविधान के सच्चे निर्माता हैं।

मैं यह जानता हूं कि उस व्यक्ति के बारे में कहना जिस पर इस देश के संविधान का भाग्य आश्रित था मेरे और आपके लिये बड़ा ही अप्रिय विषय है। मसौदा समिति का सदस्य होने पर मैं अपने आपको भाग्यशाली समझाता हूं—यह एक ऐसा तथ्य है जिसके लिये मैं अपने एक और मित्र का कृतज्ञ हूं और उनका मुझे जिक्र करना है—डॉ. एच.सी. मुकर्जी जिन्होंने जब कि आप कुछ अल्प समय के लिये यहां नहीं थे अध्यक्ष के रूप में बड़ी प्रभावपूर्ण तथा कुशल रीति से कार्य किया और उनके नाम का उल्लेख न करना अनुचित होगा। पर, श्रीमान यह तथ्य कि मैं मसौदा समिति का सदस्य था मेरे लिये एक बड़े सौभाग्य की बात थी विशेषकर इसलिये कि आपको निकट से देख सका। वास्तव में यह मेरे लिये एक महान व्यक्तिगत लाभ का विषय है और बड़े ही हर्ष का विषय है। इस सभा में मंत्रियों ने उस कार्य का वर्णन कर दिया है जो आपने सम्पन्न किया और उन बातों को दुहराना मेरे लिये आवश्यक नहीं है। सभा यह जानती है कि अध्यक्ष का मसौदा समिति से निकट सम्पर्क रहा और हमारे द्वारा किये गये अधिकांश कार्य में आपका कुछ न कुछ हाथ रहा और आपकी मंत्रणा तथा मार्गप्रदर्शन से हमें बड़ी सहायता मिली।

केवल एक अन्तिम बात और है और वह यह...

***श्री महाबीर त्यागी:** कृपा कर औरों के लिये कुछ समय रहने दीजिये।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** केवल एक आखरी बात कह लेने के बाद में बैठ जाऊंगा और वह यह है माननीय सदस्यों को यह समझ लेना चाहिये कि मसौदा समिति में हम लोगों को भी कुछ अपनी व्यक्तिगत धाराओं से प्रेम था और कुछ से ईर्ष्या व घृणा; पर इस कार्य कर हमने बिना किसी ईर्ष्या व घृणा के विचार किया और उसका फल सभा के समक्ष है। पादरी के अंडे की तरह उसके कुछ भाग अच्छे हो सकते हैं या वह समस्त रूप में बहुत अच्छा हो, पर अन्त में मैं तो इस सम्बन्ध में यही कहूंगा कि लोगों ने इस संविधान पर इस देश के जन साधारण के लिये एक संविधान बनाने के प्रयोजन से मेहनत की और यह संविधान उनको सम्मान पूर्ण जीवन बिताने में सहायक होगा और मैं यह सुझाव दूंगा कि

यह संविधान जनसाधारण को अर्पण किया जाये और जन साधारण को अर्पण करने में इस देश के कल्याण की तथा इस संविधान के कुशल तथा व्यवस्थित रूप में क्रियान्वित किये जाने की आशा है।

आपको बहुत धन्यवाद।

***अध्यक्षः** डॉ. सुब्बारायन। मैं आप से निवेदन करूंगा कि आप पांच मिनट से अधिक समय न लें।

***डॉ. पी. सुब्बारायन** (मद्रास जनरल): श्रीमान, मुझे यह अवसर देने के लिये आपका कृतज्ञ होना चाहिये, और मैं पांच मिनट ही लूंगा।

इस संविधान की केवल दो बातों को ही मैं लूंगा। अंग्रेज़ हमारे लिये केवल दो बातें छोड़ गये हैं एक असैनिक सेवाओं की कार्य-कुशलता और दूसरी विधि का राज्य। मैं समझता हूं कि इन दोनों बातों का पालन किया गया है और उनको इस संविधान में रख दिया गया है क्योंकि बिना कार्य कुशल असैनिक सेवा के शासन का चलाना और नीति को कायम रखना असम्भव हो जायेगा। मेरे विचारानुसार सरकारी प्रशासन का महत्व इस बात में निहित है कि वह कायम रहे और यदि वह कायम नहीं रहेगा तो उपद्रव अवश्य होगा और मेरे विचार से इस बात की व्यवस्था करने में, मसौदा समिति बहुत ही सावधान रही और उप-प्रधानमंत्री ने स्वयं सेवाओं की प्रशंसा की है और यह प्रशंसा ठीक है क्योंकि मेरे विचार से सेवाओं के संतुष्ट रहने में ही देश की क्षेम निहित है।

दूसरी बात जिसे मैं लेना चाहता हूं वह विधि का राज्य है जो मेरे विचार से अंग्रेजी विधि प्रणाली का एक विलक्षण अंग है। यदि कोई ऐसी वस्तु है जिसे मैं इस देश के भविष्य के लिये अपनाना चाहूंगा तो वह यह विधि का राज्य है। प्रोफेसर डाइसी ने अपनी संविधान की विधि नामक पुस्तक में इस स्थिति की पूर्ण रूप में व्याख्या की हैं। मेरे विचार से हमने इसकी व्यवस्था उस देश के उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में शक्तियां निहित करके की है और कोई भी नागरिक उस समय की सरकार के विरूद्ध, चाहे वह केन्द्रीय हो चाहे प्रान्तीय, इन न्यायालयों में अपने अधिकार की मांग कर सकता है और इस प्रकार अधिकारों का अतिक्रमण नहीं हो सकता हैं और इस कार्य को पूरा करने के लिये न्यायपालिका को पर्याप्त स्वतंत्रता दी गई है। मेरे मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी ऐयर ने यह यह ठीक संकेत किया था कि न्यायपालिका अपने आपको साम्राज्य के अन्तर्गत एक और राज्य के समान न समझे और मुझे संतोष है कि इस संविधान में जो उपबन्ध रखे गये हैं वे न्यायपालिका को एक साम्राज्य के अन्तर्गत एक और राज्य नहीं बनने देंगे। हां यह संकट सदैव बना रहता है। जब लोग शक्ति पार्थक्य की बातें करते हैं तो यह शक्ति पार्थक्य इस प्रकार से भी किया जा सकता है कि न्यायपालिका को महान शक्ति सौंप दी जाये जिससे कि वह अन्ततोगत्वा तत्कालीन शासन व्यवस्था को ही भंग करने की ओर उन्मुख हो सके, पर हमारे संविधान में मेरे विचार से ऐसी कोई बात नहीं है।

[डॉ. पी. सुब्बारायन]

एक बात और है श्रीमान, और उसके बाद मैं अपना भाषण समाप्त कर दूंगा। कुछ लोगों को वयस्क मताधिकार से भय सा लगता है। इस बात को भूलना नहीं चाहिये कि आज जो मताधिकार प्रचलित है उसके अधीन भी अधिकांश मतदाता अशिक्षित हैं। यह भारतीय जनता इस प्रकार की है कि उसमें पर्याप्त साधारण ज्ञान है और मैं तो यह कहूंगा कि अपना स्वामी पहचानने का उसे पर्याप्त ज्ञान है जिसके कारण वे विवेक सहित अपने शासक चुन लेंगे और ऐसे लोग चुन लेंगे जिनको वे समझते हैं कि वे इस प्रकार से प्रशासन कार्य कर सकेंगे जो इस जनसाधारण के लिये लाभदायक हो जिसका हमने इस सभा में इतना जिक्र किया है। श्रीमान मुझे विश्वास है कि हम एक ऐसा संविधान स्थापित कर रहे हैं जो काल की कसौटी पर खरा उतरेगा और इस देश को राष्ट्र मंडल में अपना उचित स्थान प्राप्त कराने के कार्य में सहायक होगा।

मैं अपना भाषण समाप्त कर चुका हूं। श्रीमान, आपको धन्यवाद।

***अध्यक्ष:** श्री महावीर त्यागी, आप कृपा कर केवल चार मिनट ही लगायें।

***श्री महावीर त्यागी:** श्रीमान, मैं आपका कृतज्ञ हूं कि आपने मुझे यह अवसर दिया। श्रीमान, मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि आपने जो ये चार या पांच मिनट दिये हैं ये मेरे भूत, भविष्य और वर्तमान जीवन के बड़े ही अमूल्य क्षण हैं तथा बड़े ही रोमांचकारी क्षण हैं। आज मैं अपने बड़े पुराने स्वप्नों के चित्र के तथा तीस वर्ष के अपने घोर परिश्रम के परिणाम के समक्ष खड़ा हुआ हूं। हमारे सामने एक साकार चित्र है। मुख्य कलाकार डॉ. अम्बेडकर ने अपनी कूंची दूर रख दी है और जनता के निरीक्षण तथा आलोचना के लिये चित्र का उद्घाटन कर दिया है सभा ने जो खोल कर आलोचना की है। इस चित्र को हम सबने मिलकर बनाया है और इसकी मैं और अधिक आलोचना नहीं करना चाहता हूं इस चित्र के पक्ष में जो कुछ भी कहा गया है मैं उसका पूर्ण समर्थन करता हूं। आखिर सच्चे हृदय से तथा विनम्रता पूर्वक हमें अपनी भावी सन्ततियों को उत्तराधिकार में वे श्रेष्ठ गुण देने चाहिये जो हममें हैं इस विचार से हमने इस कार्य में पूरा-पूरा परिश्रम किया है और पूरा-पूरा विचार किया है, और बहुत विचार-विमर्श तथा वाद-विवाद के पश्चात् हम इस चित्र को बना सके हैं। हमें अब यह आशा कर इसे भावी सन्तति को सदेच्छा पूर्वक उत्तराधिकार में सौंप देना चाहिये कि यदि हमारी कुछ कमियां रही हैं तो वह उन्हें क्षमा कर देगी और अपनी बुद्धि तथा योग्यता से इन कमियों को दूर करेगी। मुझे यह दिखाई देता है और यही संसार को दिखाई देगा कि इस चित्र में संकट भी है और इन संकटों को मैं अभिलेखबद्ध कराना चाहता हूं।

एक एक ऐसा प्रयोग कर रहे हैं जो संसार में असफल रहा है। हम लोकतंत्र की स्थापना कर रहे हैं; वह लोकतंत्र जिस का जहां-जहां प्रयास किया गया है

वहां वह जनता तथा जन-समुदाय की कोई वास्तविक भलाई करने में सफल नहीं हुआ है। हम कर तो उसी प्रयोग को रहे हैं, पर एक उन्नत रूप में। हमारा लोकतंत्र दोनों इंग्लैंड के संसदीय लोकतंत्र और अमरीका के गणराज्यात्मक लोकतंत्र से उन्नत रूप का है। शायद यह दोनों का सम्मिश्रण है। देखिये यह लोकतंत्र यहां सफल होता है या नहीं।

फिर भी एक संकट और है। वयस्क मताधिकार का कई मित्रों ने समर्थन किया है। मैं स्वयं बड़ा प्रसन्न हूं क्योंकि इस संविधान के समर्थकों को जब बहुत से तर्क नहीं मिले तो वे उन चन्द बातों का राग अलापने लगे जिनको इस संविधान में रखने का मैंने और मेरे जैसे विचार वाले कुछ मित्रों ने आग्रह किया था—मेरा आशय "ग्राम गणराज्यों" "घरेलू उद्योग धंधे" और "प्रतिषेध" से है। पहले इन बातों का कई उत्तरदायित्वपूर्ण लोगों ने विरोध किया था। पर अब मैं देखता हूं कि वे ही लोग इस संविधान के समर्थन में उन्हीं तर्कों का सहारा ले रहे हैं।

एक और बड़ा तर्क जिसको वे इस संविधान के समर्थन में बार-बार कहते हैं वह व्यस्क मताधिकार का महान प्रयोग है। मुझे आशंका है कि यह एक बड़ा भयानक प्रयोग है जिसे हम क्रियान्वित कर रहे हैं। और संभव है कि यह एक अजगर का रूप धारण कर ले। मैं यह नहीं जानता हूं कि हमें किस ओर ले जायेगा, चाहे जो कुछ भी हो यह प्रयोग तो करना ही है। मैं आशा करता हूं कि इन प्रयोगों में सफल उतरने के लिये भावी सन्तानों पर पर्याप्त रूप में उत्तरदायित्व होगा।

यद्यपि इस संविधान के प्रति मेरे हृदय में बड़ा सम्मान है और मैं इसकी प्रशंसा करता हूं फिर भी एक बात है जिसका मुझे बड़ा भारी भय है और वह यह है कि इस संविधान में एक वर्ग उत्पन्न करने की प्रवृत्ति पाई जाती है—एक वह वर्ग जिसका लोकतंत्र ने सर्वत्र सृजन किया है—'वृत्ति भोगी राजनीतिज्ञों' का वर्ग। सब लोकतंत्रों का संचालन 'वृत्तिभोगी राजनीतिज्ञों' द्वारा किया जाता है और उनके असफल होने का यही मुख्य कारण है, क्योंकि ऐसे व्यक्ति लोकतंत्रों पर ही जीवन बिताने लग जाते हैं। उनके लिये यह एक वृत्ति का साधन बन जाता है और राजनीति ही उनके जीवन का साधन मात्र हो जाती है। यह बात लोकतंत्र के लिये घातक है और भावी सन्तानों को मैं इससे परिचित कराना चाहता हूं। यह 'वृत्तिभोगी राजनीतिज्ञों' का सृजन करती है—वे लोग जिनकी वृत्ति राजनीति पर आश्रित है और इसका परिणाम यह होता है कि वे अन्य सृजनात्मक वृतियों से अपने आपको पृथक कर लेते हैं। यदि इस लोकतंत्र का भी संचालन ऐसे व्यक्तियों द्वारा किया जाता है जिनके पास जीवन बिताने का अन्य और कोई साधन नहीं होगा सिवा मंत्रालयों के या संसद सदस्यता के तो मुझे विश्वास है कि यह लोकतंत्र भी विनाश को प्राप्त होगा।

ऐसा संकट है। अत: मैं चाहता हूं कि भावी सन्तानें उन लोगों के हाथों का खिलौना न बनें जो 'वृत्ति भोगी राजनीतिज्ञ' हैं। संविधान का संचालन तो 'राजनीति

[श्री महावीर त्यागी]

में रुचि रखने वाले किसी अन्य वृत्ति से जीवन निर्वाह करने वाले, व्यक्तियों द्वारा होना चाहिये—ऐसे लोग जिनके पास जीवन निर्वाह करने की अपनी वृत्ति हो और जो यहां स्वेच्छा पूर्वक या न्यून वेतनों पर राज्य संचालन करने के लिये आयें क्योंकि अपनी स्वीय वृत्ति के साथ-साथ उनको राजनीति में रुचि है और देश सेवा करने की इच्छा है। मैं इस प्रकार से इस चित्र को कार्यान्वित करना चाहता हूं। पर ग्रामीणों के दृष्टिकोण से यह चित्र भद्दा और निर्जीव है। न इसमें कोई ऐसी वस्तु स्पष्ट है जिसके द्वारा वह इस संविधान को अच्छी तरह से समझ सकें; क्योंकि ग्रामीणों को हमने मत के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिया है जिसे हम उससे दो वर्ष बाद ले लेंगे। हमने उसको केवल यही एक वस्तु दी है। अत: मैं निवेदन करता हूं कि जब उन लोगों को जो खेती करते हैं यह संविधान संचालन करने दिया जायेगा तभी वे इसे अधिकारों तथा स्वतंत्रता का अपना अधिकार पत्र समझेंगे। अन्यथा यह संविधान भद्दा है। कोई नेता होना चाहिये। मैं आशा करता हूं कि हमारी भारतीय भूमि इतनी ऊसर नहीं है कि वह किसी ऐसे नेता को जन्म न दे जो इस संविधान में ऐसा जीवन अनुप्राणित करे कि यह बोल सके। वह बोलेगा यदि हमें अपने सिद्धान्तों में दृढ़ विश्वास है और मैं आपसे कहता हूं कि महामंत्र का जपना आवश्यक है और मुझे खेद है कि आज भारत में ऐसा कोई नहीं है जो इस महामंत्र को फूंके जो हमारे समस्त राष्ट्र को इस छोटी सी पुस्तक पर न्योछावर होने के लिये प्रेरित करे। और क्या मैं इस बात का संकेत करूं कि वह महामंत्र क्या है? केवल एक बात इस संविधान को आकर्षक बना देगी। यदि इस समूचे संविधान में एक सर्वोच्च उपबन्ध या रक्षाकवच रख दिया जाता तो मैं समझता हूं कि सब बातें ठीक हो जातीं। वह उपबन्ध यह है: यदि हम इसमें एक इस प्रकार का परन्तुक रख देते:

> "इस संविधान में किसी बात के होते हुये भी भारत का कोई भी नागरिक लोक निधि से या गैर सरकारी उद्यम से अपने स्वीय प्रयोग के लिये इतना वेतन लाभ या भत्ता नहीं लेगा जो एक औसत श्रमभोगी की आय से अधिक हो।"

यदि यह संविधान में हो तो सारा भारत इस संविधान द्वारा संगठित हो जाये। जब तक यह बात उसमें नहीं है तब तक भारत इसको नहीं समझ पायेगा क्योंकि यह संविधान केवल उन लोगों के लिये रोटी की व्यवस्था करता है जिनके पास भरपेट रोटी है न कि उन लोगों की रोटी की जिनके पास नहीं है।

***श्री सुरेशचन्द्र माजुमदार** (पश्चिमी बंगाल: जनरल): अध्यक्ष महोदय, चूंकि एक स्वतंत्र सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न भारत के संविधान को अन्तिम रूप दिया जा रहा है, क्या यह महान सभा अपनी एक व्यक्तिगत बात कहने की मुझे अनुज्ञा देगी और मुझे उस संस्मरण की याद ताज़ा करने की आज्ञा देगी जिससे एक स्कूल के छात्र के हृदय को पचास वर्ष पूर्व एक रात दु:खद धक्का लगा था? उस रात मैं भारतीय इतिहास की अपने स्कूल की पाठ्यपुस्तक पढ़ रहा था और मैं तथाकथित "ब्रिटिश काल" के प्रारम्भ पर पहुंच चुका था।

यह सत्य है कि विदेशी राज्य के कारण देश की आपत्ति से परिचित होने के लिये किसी व्यक्ति को ऐतिहासिक पुस्तक का अध्ययन करना आवश्यक नहीं था— एक बालक भी यह समझ सकता था। यह जान कर मेरा कोमल हृदय शोकाकुल हुआ और उसे चोट पहुंची कि अंग्रेज़ी शक्ति ने किस प्रकार हमारी आपस की मार काट और लड़ाई झगड़ों से लाभ उठाकर शिवाजी के उन स्वप्नों के नष्टावशेषों पर अपनी नींव जमाई जो स्वप्न लगभग साकार हो चुके थे। मरहटों की असफलता मुझे सबसे अधिक दु:खद घटना प्रतीत हुई और वह कुमार, जो पुन: स्वतंत्र भारत का स्वप्न देख रहा था, निराश हुआ और इस बात को आश्चर्यचकित होकर सोचने लगा कि क्या हम कभी अपने अतीत पर विजय प्राप्त कर सकेंगे और एक संयुक्त स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में उठ सकेंगे। आज मैं उन कटु संस्मरणों की याद फिर ताज़ा करता हूं और राष्ट्र ने जो सफलताएं प्राप्त की हैं उनकी मुझे बहुत अधिक खुशी है और उन पर मुझे गौरव है।

इन अन्तर्कालीन वर्षों की घटनाओं को मैं विस्तारपूर्वक नहीं लूंगा। आज मुझे वह समय अच्छी तरह याद है जब श्री अरविन्द बड़ौदा से बंगाल आये थे उन्होंने कला कौशल की जाग्रति के लिए एक आन्दोलन का सूत्रपात किया था और एक निर्भीक स्पन्दित राष्ट्रीयता के नये युग को जन्म दिया था। उन्होंने एक उग्र क्रान्तिकारी संगठन बनाने के लिये प्रोत्साहित किया और अपने गुरु स्वर्गीय जतेन्द्रनाथ मुकर्जी द्वारा मुझे एक शिविर-अनुचर होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसके बाद दु:ख और कष्टों से परिपूर्ण स्वदेशी और क्रान्तिकारी आन्दोलनों का अनोखा समय आया और लोग अपने खून पसीने और आंसुओं से विदेशी राज्य के विरुद्ध संघर्ष करते रहे। इसके बाद यकायक प्रथम विश्वयुद्ध आ धमका और उसके साथ भारत-प्रतिरक्षा अधिनियम के रूप में दमनकारी सशक्त दानव आया। और इस दानव ने स्वातंत्र्य आन्दोलन का बड़ी निर्दयता से दमन किया और ऐसा प्रतीत होता था कि यह आन्दोलन अब न पनप सकेगा। सारे देश में घोर अन्धकार छा गया कहीं कोई प्रकाश की रेखा तक दृष्टि नहीं आती थी। पर वह एक अस्थाई रूप ही था। उस समय मुझे ऐसा ही लगा। प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के साथ-साथ भारतीय रंगमंच पर गांधी का दैदीप्यमान रूप प्रकट हुआ। नव-भारत का भाग्य विधाता, राष्ट्रपिता गांधी प्रकट हुआ जिनके अतुलनीय नेतृत्व में देश की कांग्रेस ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिये संघर्ष करने के लिए एक शक्तिशाली यन्त्र के रूप में पुन: संघटन किया। अंधकार दूर होने लगा। कई संघर्षों में उन्होंने हमारा तब तक नेतृत्व किया जब तक कि उन्होंने भारत को स्वतंत्र सम्पूर्ण प्रभुत्व संपन्न बनाने के अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति नहीं की। ऐसा लगता है कि इस ऐतिहासिक संघर्ष में एक तुच्छ सेवक के रूप में भाग लेना और अपने नेताओं, अंग्रेज़ों और साथियों के साथ मिलकर स्वतंत्र भारत गणरात्य के लिये संविधान बनाना एक बहुत बड़ा गौरव है।

इतने परिश्रम और विचार के फलस्वरूप बनाये गये इस संविधान की सारे देश में चर्चा हो रही है। इसकी प्रशंसा करने में आकाश तक को छू लिया गया है

[श्री सुरेशचन्द्र माजुमदार]

तथा कटु से कटु भाषा में इसकी बुराई भी की है कुछ ऐसे हैं और मेरे विचार से इनका ही बहुमत है जो इसमें भली और बुरी दोनों बातों का सम्मिश्रण देखते हैं और समूचे रूप में इसे व्यवहारिक तथा मान्य समझते हैं। मुझे यह संविधान कैसा लगा? मेरे मन में एक ही विचार है जो अन्य सब विचारों पर छा जाता है—वह यह विचार कि यह संविधान पूर्णतया हमारा है शत प्रतिशत भारत निर्मित है। यह चाहे भला हो चाहे बुरा पर इसे हम भारत निवासियों ने बनाया है। न तो यह बाहर से हम पर लादा गया है न किसी विदेशी प्राधिकार ने हम पर इसे आरोपित किया है। जिस प्रकार से हमने इसे बनाया है कि उसी प्रकार से यदि हम चाहें तो भविष्य में इसका संशोधन कर सकते हैं। अच्छी और यदि कोई बुरी बात हो तो उसके भी सहित यह हमारी ही कृति है। इस संविधान का बनाना स्वयं ही एक सर्वोच्च कोटि का स्वतंत्र कार्य है और राष्ट्रीय स्वतंत्रता की सर्वोच्च कोटि की अभिव्यंजना है और इस रूप में मैं इसका स्वागत करता हूं। इस बात से मुझे स्वतंत्रता का तुरन्त आभास होता है और मैं अपने देशवासियों के उस वर्ग के समक्ष अपना यह व्यक्तिगत प्रमाण प्रस्तुत करता हूं जो एक आवेश पूर्ण मोह में फंस कर चीखते हैं कि "ये आजादी झूठी है।" मेरे ख्याल से इस चीख का विरोध केवल मेरी भावनाओं द्वारा ही नहीं वरन् कुछ मुट्ठी भर लोगों को छोड़कर अन्य सब भारतवासियों की भावनाओं से होता है।

यह एक सामान्य बात है पर फिर भी इसको बार-बार दुहराना आवश्यक है कि किसी संविधान की सफलता यहां तक कि चाहे वह संविधान बहुत ही सावधानी से लिखा गया हो—भाषा पर इतना निर्भर नहीं करती है जितना उस भावना पर निर्भर करती है जिसके द्वारा उसे क्रियान्वित किया जाता है। यह हम पर जनता पर निर्भर करता है कि उसे बनायें या बिगाड़ें। अत: मैं अपने सब देशवासियों से विनम्र निवेदन करता हूं कि इस संविधान को सहयोगपूर्ण भावना से कार्यान्वित करें और इसके कार्यान्वित करने में वह सारी की सारी देशभक्ति और निस्वार्थ लग्न लगा दें जो इस राष्ट्र में है और यदि वे ऐसा करेंगे तो इसमें सन्देह नहीं कि यह संविधान हमारी स्वतंत्रता, सम्पन्न्ता और सुख की वृद्धि का साधन होगा।

श्रीमान, एक और बात जिसका इस संविधान के बनाने के सम्बन्ध में वर्णन करने से मैं अपने आपको नहीं रोक सकता हूं वह यह है। जब संविधान सभा बुलाई गई थी उसे समस्त भारत का संविधान बनाने का कार्य दिया गया था। पर उसके पश्चात् चूंकि यह देश दो भागों में विभाजित हो गया यह वर्तमान संविधान केवल एक भाग पर ही लागू होता है। इस बात को भविष्य ही जानता है कि क्या कभी समस्त देश के लिये एक ही संविधान हो सकेगा।

अन्त में क्या मैं डॉ. अम्बेडकर को इस सभा में के अपने बुजुर्गों और सहयोगियों को इस महान जटिल तथा ऐतिहासिक कार्य के सफल सम्पादन पर अपनी सम्मानपूर्ण

बधाई दे सकता हूं? और मुझे पूर्ण विश्वास है कि मैं यहां उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति की भावनाओं के स्वर में स्वर मिला रहा हूं जब कि मैं आपको उस शान्त, धैर्यपूर्ण, उदार तथा पूर्ण आदर्शयुक्त रीति के लिये धन्यवाद देता हूं जिसके अनुसार आपने इस सभा में विचार विमर्श होने दिया है।

जय हिन्द!

बन्दे मातरम्!!

**लाला देशबन्धु गुप्त** (देहली: जनरल): माननीय सभापति जी, मैं आपको धन्यवाद देता हूं कि समय कम होते हुये भी आपने मुझे चन्द मिनिट देने की कृपा की है। आज से तीन साल पहले जो महायज्ञ आरम्भ किया गया था इस समय उसकी पूर्ण आहूति हो रही है। इसलिये यह अभिनन्दन का समय है। बधाई और धन्यवाद देने का समय है। कड़ी समालोचना का समय नहीं है। हमने यह विधान बनाने में मिलकर तीन साल तक कोशिश की है और इसको मिलकर बनाया है। इसलिये अब जब कि विधान तैयार हो गया है कोई कटु समालोचना करना मुनासिब न होगा। लेकिन मैं इस समय एक बात अपने महानुभावों को याद दिलाना चाहता हूं और वह यह है कि अब यह विधान देश और संसार के सामने जा रहा है इसे हम ने देहली में बैठकर सबने पिछले तीन वर्ष में इस विधान को बनाया है। लेकिन खेद की बात है कि देहली वालों के लिये इसमें उत्साह का कोई सामान नहीं है। मैं शिकायत नहीं करता इसलिये कि मुझे विश्वास है कि इस विधान परिषद् के सदस्य दिल्ली वालों की मांग के साथ हमदर्दी रखते हैं और अगर उनका बस चलता तो वह जरूर ऐसी तरमीम करते कि देहली वालों को भी आज खुशी मनाने का अवसर होता और 26 जनवरी के बाद जब यह विधान देश में लागू होगा तो देहली के दिन भी फिरते। मैं जानता हूं कि विधान परिषद् के सदस्य देहली के लिये अपने दिल में स्थान रखते हैं। और देहली वालों की मुसीबतों का भी उन्हें थोड़ा बहुत अन्दाज़ा है लेकिन देहली के दुर्भाग्य की वजह से कुछ समस्यायें सामने आती रही हैं जिनकी वजह से रास्ते में रुकावटें खड़ी हो गई और इस विधान में देहली को कोई स्थान नहीं मिला। जिस देहली ने आज़ादी की लड़ाई 1857 से लड़ी है, जिस देहली के लोगों ने छै छै माह तक चने चबा चबा कर दुश्मनों की तोपों का मुकाबला किया, जिस देहली के चप्पे चप्पे पर आज भारत का इतिहास लिखा हुआ है उसी देहली की लगभग बीस लाख जनता को आज यह अनुभव होता है कि अब भी जब कि सारे देश में स्वराज्य हो गया है, जनता का राज्य हो गया है देहली वालों के लिये कोई परिवर्तन राज प्रणाली में नहीं हुआ और अगस्त 1947 से पहले जो ऐडमिनिस्ट्रेटिव सेटअप अंग्रेज़ों ने बनाया था इस विधान के बाद भी वही सेटअप जारी रहेगा। इससे दिल्ली वालों की निराशा का अन्दाजा लगाया जा सकता है लेकिन आशा की एक रेखा नज़र आती है और वह यह कि हमारे प्रधान मंत्री ने इसी भवन में हमें यह विश्वास दिलाया है कि 26 जनवरी से पहले पार्लियामेंट द्वारा एक कानून पास किया जायेगा जिस कानून के जरिये यह प्रयत्न किया जायेगा कि देहली

[लाला देशबन्धु गुप्ता]

की जनता को भी दिल्ली के ऐडमिनिस्ट्रेशन में मुनासिब अधिकार दिया जाये। इस लिये मैं आशा करता हूं कि जब ऐसा बिल पार्लियामेंट के सामने आयेगा इस विधान परिषद् का कोई भी सदस्य इस ऐशोरेन्श को जो कि प्रधान मंत्री ने दी है भूलेगा नहीं। और यह जो अब चिराग तले अन्धेरे की कहावत दिल्ली पर लागू होती है उसे नहीं रहने देंगे। मैं आशा करता हूं कि आप देहली वालों का जरूर ख्याल रखेंगे। देहली वाले कोई बड़ी मांग नहीं कर रहे हैं। सिर्फ यह चाहते हैं कि आपने जो यह खूबसूरत गुलदस्ता बनाया है यह खूबसूरत चित्र बनाया है उसमें देहली को भी कुछ स्थान होना चाहिये।

मैं एक और बात की तरफ हाऊस की तवज्जो खींचना चाहता हूं और वह यह है कि प्रेस की आज़ादी के बारे में हमारे फेंडामेन्टल राइट्स में खास तौर पर कोई दफा नहीं रखी गई है। दुनियां के अनेक विधानों से हमने अपने इस विधान में बहुत कुछ लिया है। आयरलैंड और अमेरिका और दूसरे देशों के विधान से हमने कई बातें नकल की हैं। मगर प्रेस जिसको कि फोर्थ स्टेट कहते हैं इस बारे में हमने उनसे कोई फायदा नहीं उठाया है। चुनाचे इसका इस विधान में कोई ज़िक्र नहीं है। अमेरिका के एक कान्स्टीट्यूशन के महा पंडित थामेस जैफ्र्सन ने कहा था:

> "Were it left to me to decide whether we should have Government without newspapers or newspapers without Government I should not hesitate a moment to prefer the latter. But I should mean that every man should receive these papers and be capable of reading them."

अमेरिका के विधान में विधान बन जाने के बाद प्रेस की आजादी की दफा तरमीम के तौर पर दाखिल की गई थी। मैं चाहता हूं कि हमारे विधान में भी प्रेस की आजादी का साफ शब्दों में ज़िक्र हो। मुझे यह आशा है कि ऐसा अवसर आयेगा कि हमारी पार्लियामेंट के सदस्य भी इस बात पर गौर करेंगे और तरमीम करने में पश व पेश नहीं करेंगे और हमारे विधान में हमारे प्रेस को भी ऐसा स्थान जो उसके योग्य है प्राप्त होगा।

इन अलफाज के साथ प्रधान जी मैं आपका धन्यवाद फिर एक दफा करता हूं और यह प्रार्थना करता हूं कि यह विधान सफल हो।

**पंडित बालकृष्ण शर्मा:** अध्यक्ष महोदय, जबकि मैं इस सम्पूर्ण वादविवाद में इस संविधान के पक्ष और विपक्ष में विभिन्न भाषणों को बैठा हुआ सुन रहा था मुझे विक्टर ह्यूगो की प्रसिद्ध पुस्तक 'दी नाइन्टी थ्री' की याद आई। उस पुस्तक में ह्यूगो अभिसमय के बारे में लिखते हैं और वे कहते हैं: ''अब हम अभिसमय को लेते हैं। अब हम हिमालय के समीप आते हैं।'' और आगे वह ये कहते है कि इस अवसर के सम्पूर्ण महत्व को हम नहीं समझ सकते हैं क्योंकि हम

इसके बहुत निकट हैं? उन की यह बात सही है। पहाड़ की ओर कुछ दूरी से देखिये तो आप उस विशालता का कुछ अनुभव कर सकेंगे। पर यदि आप उसके बहुत निकट हैं तो आप उस विशालता का अनुभव नहीं कर सकते।

श्रीमान, मैं समझता हूं मेरे उन आलोचक और समर्थक मित्रों में जो हमारे संविधान को तृतीय पठन की स्थिति में बोले हैं इस ऐतिहासिक अवसर के महत्व को समझने की उचित विचार व्यापकता तथा क्षमता नहीं है। हम यहां आये और हमने अपने ही संविधान की आलोचना की। हां यह हो सकता है कि इसमें दोष हों, यह भी हो सकता है कि ऐसे लोग हों जिनके विचार इस संविधान के सब उपबन्धों से पूर्णतया मेल न रखते हों, पर फिर भी हमें यह शोभा नहीं देता कि यहां आकर इस महान सभा को निन्दात्मक आलोचना करने की भावना से सम्बोधित करें। यदि इस संविधान में त्रुटियां हैं तो उनका उत्तरदायित्व आखिर किस पर है? क्या हम ही वे लोग नहीं हैं जो इसमें गत तीन वर्ष तक लगे रहे और जिनको इसके प्रति उत्तरदायी समझा जाये। यदि सेठ दामोदर स्वरूप जैसे व्यक्ति खड़े होकर यह कहें कि यह एक ऐसा संविधान है जिसे इस देश के लोग नहीं मानेंगे तो मैं इस बात को समझ सकता हूं, पर मैं उनको यह कह सकता हूं कि हम यहां गत तीन वर्षों से जनता के प्रतिनिधियों के रूप में बैठे रहे हैं। जनता की हम उस इच्छा के रूप में यहां हैं जिसे रूसी 'नारो दिना वोलिया' कहते हैं। जनता की हम उस इच्छा के रूप में यहां हैं और इस रूप में हम यहां गत तीन वर्ष तक बैठे हैं और मैं आपको यह कह सकता हूं कि संविधान का हर एक खंड इस देश के लोगों को मान्य है। इस बात में कोई भी शंका नहीं होनी चाहिये।

चार या पांच बातें हैं जिनके लिये इस संविधान की आलोचना की गई है। पहली यह है कि यह कहा गया है कि हम केन्द्रीय करण की ओर बहुत झुक गये हैं। दूसरी यह आपत्ति उठाई गई है कि मूलाधिकारों के चारों ओर अनेक अवरोधों द्वारा कंटीली झाड़ियां लगा दी गई हैं। तीसरी आपत्ति यह है कि इसकी भावना अभारतीय है और चौथी आपत्ति यह है कि न्यूनाधिक रूप में यह भारत शासन अधिनियम की प्रतिलिपि है। पांचवीं बात यह है कि यह संविधान देश को उस आर्थिक स्वातंत्र्य के प्रकाश का आभास करने का कोई अवसर नहीं देता जिसका उपभोग हम सब चाहते हैं कि यह देश करे।

इन पांच बातों के लिये इस संविधान की आलोचना की गई है। आइये, हम प्रत्येक आपत्ति पर विचार करें और इन पर कुछ तर्क का प्रकाश डालें। जब हम यह कहते हैं। कि केन्द्रीकरण का पक्ष लेकर हमने बड़ी भारी भूल की है और जब हम अपने संविधान की इसी बात के कारण आलोचना करते हैं तो क्या हम अपने इतिहास में, अपनी परम्परा में पृथक् होने की ऐतिहासिक परम्परा को नहीं भूल जाते हैं। यह देश इस नाशक प्रवृत्ति का शिकार रहा है और इसके कारण इस देश की उन्नति में बाधायें आई हैं और यह याद रखिये इतिहास में भारत ने अपना मस्तक तभी ऊंचा किया है जबकि एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार की

[पंडित बालकृष्ण शर्मा]

स्थापना हुई। अन्यथा भारतीय इतिहास जैसी कोई वस्तु नहीं है, भारतीय वंश नाम की कोई वस्तु नहीं है। अत: हमें यह नहीं भूल जाना चाहिये कि जब हमें इस प्रवृत्ति का इस नाशक प्रवृत्ति का, इस केन्द्र-विघटनकारी प्रवृत्ति का विरोध करना है तो यह अत्यावश्यक है कि केन्द्र को शक्तिशाली बनाया जाये।

दूसरी आपत्ति यह है कि मूलाधिकार एक हाथ से दिये गये हैं और दूसरे हाथ से छीन लिये गये हैं। मैं इस तर्क को कभी भी नहीं समझ पाया। महात्मा गांधी के शब्दों में क्या नागरिक स्वातन्त्रय का अर्थ आपराधिक लाइसेंस है? नागरिक स्वातन्त्रय का अर्थ आपराधिक लाइसेंस नहीं है। यदि वाक्-स्वातन्त्रय हैं तो इसका अर्थ यह नहीं कि मैं जिस किसी व्यक्ति को न चाहूं उसको गाली देने में स्वतंत्र हो जाऊं और इस प्रकार की बातों की कमी हमारे संविधान में की गई है। अत: यह तर्क मुझे बहुत ही निराधार प्रतीत होता है और मैं इसे कभी नहीं समझ पाया हूं।

तीसरा तर्क कि यह भारत शासन अधिनियम की प्रतिलिपि है और अभारतीय है, इसके सम्बन्ध में जो कुछ मैं कह सकता हूं वह यह है कि मसौदा समिति, डॉ. अम्बेडकर और उन सबके लिये जिन्होंने डॉ. अम्बेडकर का साथ दिया यह गौरव की बात है कि वे संकीर्णता की किसी भी भावना से प्रेरित नहीं हुये। आखिर हम एक संविधान बना रहे हैं और हमारे सामने आधुनिक प्रवृत्तियां, आधुनिक कठिनाइयां और आधुनिक समस्यायें हैं और अपने संविधान में इन सबके लिये हमें उपबन्ध करना है और इस कार्य के लिये यदि हमने भारत शासन अधिनियम का सहारा लिया है तो मैं नहीं समझता हूं कि हमने कोई पाप किया है।

इस आलोचना के सम्बन्ध में कि यह अभारतीय है जो कुछ मैं कह सकता हूं वह यह है कि हम भारतीय यहां समवेत हुये हैं और हमने यह संविधान बनाया है। वाक्यावली अवश्य अभारतीय है, परन्तु आज हमारे सामने ऐसी कई समस्यायें हैं जिनका रूप अभारतीय है इस कारण मैं कहता हूं कि यदि वाक्यावलि वहां है, भी तो क्या हुआ? उसे वहां रहने दीजिये, पर क्या इसी कारण वह अभारतीय हो गया? इस संविधान में हमारी कठिनाइयां हैं, और वे सब समस्यायें जिनको हमें सुलझाना है इस संविधान में दी गई हैं और इस संविधान में देश पर शासन करने की एक शैली निर्धारित कर दी गई है। इसलिये मैं कहता हूं कि यह अभारतीय नहीं है।

इस केन्द्रीकरण और मूलाधिकारों के बारे में मेरे मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने क्षमायाचना की है। उन्होंने कहा "हां, अपने अतीत इतिहास की ओर देखते हुये हमें इस बात पर बड़ा दु:ख है।" मैं इसके प्रति कोई क्षमायाचना नहीं करता हूं। श्री कृष्णमाचारी, आपने सोच समझकर जो कुछ तय किया, जो कुछ मसौदा समिति समिति और डॉ. अम्बेडकर ने किया वही हमारे लिये बिल्कुल ठीक है और वही चीज़ हमें अराजकता से बचा सकती है। इसलिये मैं कहता हूं कि जो लोग इस भावना से इस बात की आलोचना करते हैं वे सही नहीं हैं।

इस संविधान की आत्मा कहां है? प्रश्न यह है कि इस संविधान को कौन कार्यान्वित करेगा जो इस संविधान को कार्यान्वित करेगा वह एक निष्कलंक, पवित्र तथा सुसंगठित राजनैतिक पक्ष होगा या उपद्रवी मनुष्यों का कोई गिरोह होगा? आज मैं अपनी आंखों के सामने ही उस महान राष्ट्रीय संगठन को छिन्न भिन्न होते हुये देखता हूं जिसका निर्माण राष्ट्रपिता ने किया था। प्रश्न यह है कि कौन व्यक्ति आगे बढ़े और मशाल अपने हाथ में लेकर प्रकाश दिखाये और उस महान संगठन को एक बार फिर संगठित करे जिसने मानव इतिहास में एक बड़ी ही आश्चर्यजनक क्रान्ति की और वह आश्चर्यजनक क्रान्ति अहिंसा द्वारा देश को स्वतन्त्र करना है हां यह सत्य है कि यह सब उस एक महान आत्मा की प्रेरणा द्वारा हुआ— उस आत्मा की प्रेरणा द्वारा जो दो हजार वर्ष में एक बार अवतरित होता है। परन्तु हमारे लिये भविष्य के गर्भ में क्या छिपा हुआ है? यदि कांग्रेस को छिन्न-भिन्न होने दिया जाता है, यदि स्वार्थियों द्वारा कांग्रेस को खराब होने दिया जाता है तो मैं आपको यह कहे देता हूं कि इस देश में इससे अच्छा संविधान भी कुछ नहीं कर पायेगा। अतः आज मैं यह अनुभव करता हूं कि इस संविधान को क्रियान्वित करने का एक ही मार्ग है और वह मार्ग यह है कि हमारे प्रधान मंत्री अपने पद से त्यागपत्र दे दें और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की अध्यक्षता स्वीकार करें और एतद द्वारा लोगों में नया विश्वास भरें और इस प्रकार एक ऐसी स्थिति पैदा करें जिसमें इस संविधान का कार्यान्वित करना सरल हो जाये।

(श्री तजम्मुल हुसैन भाषण देने के लिय खड़े हुए)

***अध्यक्षः** हम सात मिनट तक वाद विवाद और जारी रखेंगे, मैं इस समय में तीन या चार सदस्यों को भाषण देने का अवसर देना चाहता हूं।

***श्री राजबहादुर** (राजस्थान): अध्यक्ष महोदय, मैं आपका कृतज्ञ हूं कि आपकी, मसौदा समिति की और संविधान सभा के सदस्यों और कर्मचारियों की जो यथायोग्य उच्च प्रशंसा की जा रही है उसमें सहयोग देने का आपने मुझे अवसर दिया। यह एक महानतम ऐतिहासिक महत्व का अवसर है। मैं इसे महानतम महत्व का अवसर कहता हूं क्योंकि हमारे इतिहास में यह प्रथम अवसर है जब कि राष्ट्र के चुने चुने प्रतिनिधि एक स्थान पर एकत्रित हुये हैं और उन्होंने देश के लिये संविधान बनाया है। इसका महत्व और भी दूना हो जाता है चूंकि इस संविधान के निर्माता हमारे वे महान और योग्य नेता हैं जिन्होंने हमारे देश को स्वतंत्र किया और फिर हमारे इतिहास में प्रथम बार जन साधारण को मूलाधिकार मानव मूलाधिकार दिये हैं और प्रत्याभूत किये गये हैं। इन बातों के कारण मैं इस अवसर को महान कहता हूं। श्रीमान, इस प्रकार के किसी भी माननीय साहसिक प्रयत्न में अर्थात् संविधान बनाने के साहसिक प्रयत्न में पूर्ण रूप से एकमत होना असम्भव है। कदाचित एकमत होने की सम्भावना केवल मूर्ख समाज में ही की जा सकती है। अतः यदि मतभेद है तो यह हमारी बुद्धिमत्ता का चिन्ह है, इस बात का चिन्ह है कि हमारा राष्ट्र विचारशील है, मननशील है। हम सबके लिये प्रत्येक विषय में तथा समस्त प्रश्नों पर एकमत हो जाना असम्भव है। आश्चर्य इस बात पर नहीं है कि हम इससे अच्छा संविधान न बना सके। आश्चर्य तो इस बात पर

[श्री राजबहादुर]

है कि हम किसी एक उस सीमा तक एकमत हो गये जो इस संविधान में समाविष्ट है। मैं बहुत ही आदरपूर्वक यह निवेदन करूंगा कि जहां तक देशी राज्यों की जनता का सम्बन्ध है हम सबके लिये यह एक बड़ी कृतज्ञता का विषय है। जब हमने इस विशाल भवन के द्वार में प्रवेश किया हमारे मन में यह संशय था कि जैसा विभिन्न करार पत्रों में दिया हुआ है इन राज्यों को अपनी संविधान सभायें बुलानी होंगी। सौभाग्यवश ये सब संशय निराधार सिद्ध हुये। अब जब कि इस संविधान को अन्तिम रूप दिया जा रहा है, जब यह महान कार्य समाप्ति पर है हमारे लिये यह बड़े संतोष की बात है कि वही संविधान राज्यों पर भी लागू होगा जो हमारी एकता का प्रतीक है और हमारे राष्ट्रीय एकता और दृढ़ता का प्रतीक है। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि इस संविधान के उपबन्धों के प्रति मुझे कोई खेद नहीं है। देशी-राज्यों से सम्बन्ध रखने वाले कुछ उपबन्धों के प्रति मुझे खेद है। मुझे इस कारण खेद है कि अनुच्छेद 371 के अधीन दस वर्ष की अवधि के लिये इन राज्यों के प्रशासन पर केन्द्र के नियंत्रण का आरोपण किया गया है—एक प्रकार का दुहरा लोकतन्त्र, जिसकी इन एककों के लिये व्यवस्था की गई है। भाग क में के राज्यों के लिये एक प्रकार के लोकतन्त्र की व्यवस्था की गई है और भाग ख में राज्यों के लिये दूसरे प्रकार के लोकतन्त्र की। यहां मैं उस अनुभव को प्रकट करूंगा जो हमें इन राज्यों और इन राज्य-संघों में हुआ। हमने देखा है कि राज्य-संघों में किस प्रकार राज्य-मंत्रालय में मंत्रालय चुने हैं, किस प्रकार राज्य-मंत्रालय ने परामर्श दाता और सचिव चुने हैं, उसी मंत्रालय द्वारा दिन प्रतिदिन की नीतियों और कार्यक्रमों का नियंत्रण किया जाता है...

इस समय अध्यक्ष ने घंटी बजाई पर फिर भी जनता द्वारा किया गया दोषारोपण स्थानीय कांग्रेस संस्था के कांग्रेसियों के मत्थे आता है। अन्त में मैं केवल यही कहूंगा कि इस संविधान में चाहे जो दोष या गुण हों, सारी बातें इसके क्रियाकरण पर निर्भर हैं। जैसा ब्राइस ने कहा है "एक संविधान-रूपी पौद का लगाना सरल है पर उस प्रवृत्ति-रूपी पौदे का लगाना सरल नहीं है जिसकी उस संविधान को कार्यान्वित करने में आवश्यकता है।" अत: हम सब उस महान अमरीका निवासी महान राजनीतिज्ञ बेन्ज़ामिन फ्रेंकलिन के शब्दों को याद करें जिन शब्दों को मैं इस सभा के तथा बाहर के लोगों के लिये प्रस्तुत करता हूं "अपने मिथ्या-अभिमान को हम छोड़ दें। हम यह न समझें कि हम त्रुटि नहीं कर सकते हैं।" हममें से ऐसा कोई भी नहीं है जो त्रुटि नहीं करता हो। इस संविधान में चाहे जो कुछ गुण या दोष हों पर इस बात में सन्देह नहीं है कि यह संविधान कार्यान्वित हो सकता है। इस संविधान की परिसीमायें हमारी अनोखी परिस्थिति की परिसीमायें हैं—और इसकी सफलतायें इस पीढ़ी की सफलतायें हैं—वह पीढ़ी जिसने देश को दासत्व से छुड़ाकर स्वतंत्र किया। अत: मैं इसका अपने नेताओं की एक महान सफलता के रूप में स्वागत करता हूं। यदि हम प्रस्ताव के भावानुसार इस संविधान को कार्यान्वित करते हैं तो मुझे विश्वास है कि हमारे देश का भविष्य महान होगा।

***श्री तजम्मुल हुसैन** (बिहार: मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, हमारी यह आलोचना की जाती है कि इस संविधान के बनाने में हमने बहुत समय लिया। इन आलोचकों को मैं यह याद दिलाऊंगा कि दो अधिराज्यों ने लगभग एक ही समय अपना संविधान बनाना आरम्भ किया। हमने समाप्त कर दिया और दूसरे को भी अभी आरम्भ करना है।

श्रीमान, इस संसार में कोई वस्तु पूर्ण नहीं है। कोई भी यह नहीं कह सकता है कि हमारा संविधान पूर्ण है, पर हां जो अच्छे से अच्छा संविधान बना सकता था वह यह संविधान है। मेरी अपनी सम्मति के अनुसार यह एक आदर्श संविधान है। न्यायपालिका स्वतंत्र होगी; हमें स्वातंत्र्य, समानता और बन्धुत्व प्राप्त होगा; हमारा देश अब एक संयुक्त भारत है; राजाशाही व्यवस्था का अन्त हो गया; अल्पसंख्यक वर्गों का प्रश्न हल हो गया; स्थानों का कोई संरक्षण नहीं है; पृथक् निर्वाचन नहीं हैं; अस्पृश्यता मिटा दी गई है। श्रीमान, इस अद्‌भुत संविधान के बनाने का श्रेय सामान्यतया हम सबको है क्योंकि इस सभा के हम सब सदस्यों ने श्रीमान जी, आपके साथ अपना पूर्ण सहयोग किया। हमने अपने भाषण संक्षिप्त रूप में दिये। हमने रुकावट डालने का कभी प्रयास नहीं किया। आपने जो प्रक्रिया निर्धारित की उसका हमने अनुसरण किया। पर मैं उन लोगों के नाम बताना चाहूंगा जो इतने अल्पकाल में इस संविधान के बनाने के विशेषकर ज़िम्मेवार हैं। सर्वप्रथम मैं आपका नाम पेश करूंगा। आपने इस सभा की कार्यवाहियों का संचालन बड़े ही प्रशंसनीय तथा प्रभावपूर्ण ढंग से किया। कठिन परिस्थितियों को आपने नीति पूर्वक सुलझाया। आप सच्चाई और विश्वासपात्रता के आदर्श हैं और हमारे साथ आपका व्यवहार सहानुभूतिपूर्ण रहा...

***अध्यक्ष:** इस विषय को रहने ही दीजिये।

***श्री तजम्मुल हुसैन:** आपने असीम कृपा और सहृदयता दिखाई। इस महान आसन को ग्रहण करने के लिये आप ही सबसे अधिक योग्य व्यक्ति हैं। आप की अनुपस्थिति में डॉ. मुकर्जी ने इस आसन को ग्रहण किया और बड़े सुन्दर रूप से कार्यवाहियों का संचालन किया। इस संविधान के बनाने का श्रेय विधि-मंत्री को है। वे एक प्रतिभाशाली व्यक्ति हैं। संसार के सब संविधानों और विधियों की हर एक बात वे जानते हैं। वे क्या नहीं जानते हैं इस बात को जानने की जरूरत नहीं। स्वास्थ्य अच्छा न रहने पर भी आरम्भ से अन्त तक उन्होंने कठिन परिश्रम किया है। उनके अविराम परिश्रम से यह सुन्दर संविधान बन पाया है। अपने नेता प्रधान मंत्री के हम बड़े कृतज्ञ हैं। उन्होंने भारत का गौरव ऊंचा किया है। जहां कहीं वे जाते हैं उनके मनोहर व्यक्तित्व की छाप पड़े बिना नहीं रहती है। जब हमारे सामने कठिन तथा उलझी हुई समस्यायें आ जाती हैं उन्होंने कई बार हमारी सहायता की। हमारे उप-प्रधान मंत्री ने अपने आपको एक दृढ़ तथा शक्तिशाली प्रशासक सिद्ध कर दिया है। उन्होंने ऐसे काम किये जिन्हें कोई अन्य व्यक्ति नहीं कर सकता था। उन्होंने राजाशाही व्यवस्था को मिटा दिया। उन्होंने पृथक निर्वाचन

[श्री तजम्मुल हुसैन]

को समाप्त कर दिया। अब हम वास्तव में यह कह सकते हैं कि भारत में समानता, बन्धुत्व और स्वातंत्र्य है। सबसे अन्त में हमारे कर्मचारीगण हैं, पर इस अन्तिम रूप में लेने से उनका महत्व कम नहीं हो जाता है, उन्होंने बड़ा कठिन परिश्रम किया है; हममें से कई व्यक्तियों से अधिक मेहनत का कार्य इन्होंने किया है; उन्होंने सवेरे से अर्द्धरात्रि तक कार्य किया है। कुछ दोषों के होते हुए भी यह एक अद्भुत और सुन्दर संविधान है और हमें इसका गौरव होना चाहिये। अब मैं इसके कुछ दोषों पर विचार प्रकट करूंगा। केवल दो ही दोष हैं।

(इस समय अध्यक्ष ने घंटी बजाई।)

श्रीमान, कम से कम एक के बारे में तो मुझे कह लेने दीजिये।

(फिर घंटी बजाई गई।)

माननीय अध्यक्ष महोदय ने अपना भाषण समाप्त कर देने का मुझे आदेश दिया है। मैं अब और अधिक नहीं कहूंगा पर फिर भी मैं यह कहूंगा कि यह एक सर्वोत्तम संविधान है। इसमें दो दोष हैं जो उल्लेखनीय हैं पर उनका उल्लेख करना मैं नहीं चाहता हूं।

***श्री कमलेश्वरी प्रसाद यादव** (बिहार: जनरल): माननीय अध्यक्ष महोदय, इस संविधान के सम्बन्ध में कई माननीय सदस्यों ने कहा है कि इस संविधान में क्या रखा है। यह तो केवल एक फेन्टास्टिक मिक्सचर ऑफ कान्स्टिट्यूशन्स ऑफ दी वर्ल्ड है। किन्तु मेरी समझ में नहीं आता कौन-सा ऐसा कान्स्टिट्यूशन बनाया है तो उसमें तरह तरह की हर एक देश की अच्छी अच्छी चीज़ों को नहीं रखा है। ठीक उसी तरह से हमने हमें जो जो अच्छी चीजें मालूम हुई उनको इसमें चुन-चुन कर रखा है। इसमें खूबियां भरी पड़ी हैं। हमारा देश आज एक और भाषा एक है। एबोलिशन ऑफ अनटचेबिलिटी—मानव मानव में जो अस्पृश्यता जैसी जघन्य चीज़ हमारे देश में मौजूद थीं, उसका आज खात्मा हुआ, इसके लिये हमें आज बहुत खुशी है। हमारे यहां अडल्ट सफरेज़ अर्थात् बालिग मताधिकार जो है उसके सम्बन्ध में जैसा आस्ट्रेलिया, कनाडा और अन्य देशों में है उससे बहुत ऊंचे हम उठे हैं। नागरिकता के सम्बन्ध में भी वही चीज़ है और पंडित जवाहरलाल नेहरू के नायकत्व में जो हमने अपने देश को सेकुलर स्टेट रखा है वहां भी हमने अपना बहुत ऊंचा आदर्श रखा है एक समय था जब जापान की तरफ सारा एशिया देखा करता था आज भी एक समय है जब हिन्दुस्तान की तरफ सारे एशिया की नज़र लगी हुई है कि हिन्दुस्तान जाति, धर्म, भाषा और राष्ट्रीयता—किसी चीज का पक्षपात करता है या नहीं। इसकी तरफ एक टक से देख रहा है कि हम कितना ज़्यादा ऊंचे उठ रहे हैं।

त्रुटियों के सम्बन्ध में हमें सबसे पहली चीज़ जो खटकती है वह विश्वबंध बापू के सम्बन्ध में—जिन्होंने हमें रास्ता दिखाया, चलना सिखाया, अपने सांचे में

ढाला, सत्य और अहिंसा का पाठ पढ़ाया। जिन्होंने हमें कुर्बानियां करना सिखाया। जिनके कारण हम आज स्वतंत्र हैं, जिनकी वजह से हम इस संविधान सभा में आये अब संविधान पास करने हम जा रहे हैं और उसको सारे देश में लागू करने जा रहे हैं। कितना दुखद है कि इसके सम्बन्ध हमने उनकी चर्चा तक नहीं की। उसके बाद जो छोटे सूबे और जिनकी आमदनी कम है उनमें लेजिसलेटिव कौंसिल नहीं रहना चाहिये। उन सूबों में जहां आमदनी कम है, मेरी समझ में नहीं आता कि वहां लेजिस्लेटिव कौन्सिल क्यों रखा गया है। बिहार हम लोगों ने विधायिका सभा में एकमत से इसे पास किया था कि वहां लेजिसलेटिव कौन्सिल न हो परन्तु वह एक मत से स्वीकृत निर्णय यहां आकर पलट गया। वहां बड़े-बड़े विद्वान और एक्सपर्टस के रखने का जो ख्याल है उस चीज़ के लिये हम लोग दूसरा प्राविजन कर सकते थे किन्तु हम लोगों ने ऐसा नहीं किया। हम लोग उन्हें निश्चित अवधि के लिये नामजद कर सकते थे जिसमें वे अपना विचार दे सकते थे और वाद-विवाद कर सकते थे। जिसमें वे अपना विचार दे सकते थे और वाद-विवाद कर सकते थे। सिर्फ उन्हें वोट देने का हक नहीं होता। हम ने डाइरेक्टिव प्रिंसिपल्स जो दिये हैं अपने संविधान में उसमें 40 से 51 तक जो धारायें हैं सब में 'endeavour to' की झड़ी लगी हुई है। ऊपर से देखने से बहुत सुन्दर मालूम होता है। शहरी है पर आत्मा नहीं। मेरी समझ में आता है कि जब हम कोई काम करते हैं या टालना चाहते हैं तो हम आधे मन से कह दिया करते हैं कि "मैं कोशिश करूंगा।" मुझे ऐसा लगता है कि यही है यहां पर "endeavour to" इसी तरह अध्यक्ष जी, शराब के सम्बन्ध में हमने जैसा, रखना चाहा था वैसा नहीं रखा। गौवध भी हमने पूरी तरह से नहीं रोका। 340 धारा में पिछड़ी जातियों के सम्बन्ध में जो एक कमीशन बनाने की बात है वह विधान लागू होने के छह महीने के अन्दर बन जाना चाहिये। क्योंकि यह समस्या बहुत गम्भीर है। जब तक सभी समान स्तर पर नहीं आयेंगे देश की उन्नति नहीं हो सकती। उसके बाद मैं कहना चाहता हूं कि प्रान्तीयता की भावना आज बहुत जोर पकड़ रही है और बड़े-बड़े एवं उन्नत प्रान्त छोटे प्रान्तों के हिस्सों को निगल जाना चाहते हैं। इसके सम्बन्ध में मिसाल मैं बिहार की देना चाहता हूं कि वहां के खनिजों का सब मुनाफा बम्बई और कलकत्ता चला जाता है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** इस संविधान सभा के पिछले कार्य की ओर ध्यान देने से यह विदित होता है कि जब यह प्रथम बार 9 दिसम्बर 1946 को समवेत हुई थी उस समय से अब तक दो वर्ष ग्यारह महीने और सत्रह दिन हुये हैं। इस समय में संविधान सभा के कुल सत्रह सत्र हुये। इन सत्रह सत्रों में से प्रथम छः सत्र लक्ष्यमूलक संकल्प पारित करने और मूलाधिकार विषयक, संघ संविधान विषयक, संघ की शक्तियों की, प्रान्तीय संविधान विषयक, अल्पसंख्यक-वर्ग विषयक तथा अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जनजातियों विषयक समितियों के प्रतिवेदनों पर विचार करने में लगे। सातवें, आठवें, नौवें, दसवें और ग्यारहवें सत्रों में संविधान के मसौदे पर विचार हुआ। संविधान सभा के इन ग्यारह सत्रों में 165

[डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

दिन लगे। इनमें से सभा ने 114 दिन संविधान के मसौदे पर विचार करने में लगाये।

मसौदा समिति का निर्वाचन संविधान सभा ने 29 अगस्त 1947 को किया था। उसकी पहली बैठक 30 अगस्त को हुई। 30 अस्त से उसकी बैठक 141 दिनों तक हुई और इस समय में वह संविधान का मसौदा तैयार करने में लगी रही। मसौदा समिति के लिये कार्य करने के लिये संविधानिक परामर्शदाता द्वारा तैयार किये गये संविधान के मूल मसौदे में 243 अनुच्छेद और 13 अनुसूचियां थीं। मसौदा समिति द्वारा जिस रूप में संविधान का प्रथम मसौदा संविधान सभा में उपस्थित किया गया था उसमें 315 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियां थीं। विचार-स्थिति के समाप्त होने पर संविधान के मसौदे में अनुच्छेदों की संख्या बढ़कर 386 हो गई। अपने अन्तिम रूप में संविधान के मसौदे में 395 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियां हैं। संविधान के मसौदे पर भेजे गये कुल संशोधनों की संख्या लगभग 7635 थी। इनमें से सभा में पेश किये गये संशोधनों की संख्या 2473 थी।

इन तथ्यों का मैंने इसलिये वर्णन किया है कि एक स्थिति ऐसी आ गई थी जब यह कहा जाता था कि कार्य समाप्त करने में सभा ने बहुत अधिक समय ले लिया, वह आराम से चल रही है और लोक-धन का अपव्यय कर रही है। 'गांव में आग लग रही है और कहार नाचने में मस्त हैं, की कहावत चरितार्थ हो रही है, कहा जाता था। क्या यह शिकायत किसी रूप में भी न्याययुक्त है? आइये हम उस समय पर विचार करें जो अन्य देशों की संविधान सभाओं ने अपना संविधान बनाने में लगाया। इनके कुछ उदाहरण लीजिये। अमरीका का सम्मेलन 25 मई 1787 को हुआ और 17 सितम्बर 1787 में उसने अपना कार्य समाप्त कर दिया—अर्थात् चार माह में कनाडा का संविधान सम्बन्धी सम्मेलन में 10 अक्तूबर 1864 को हुआ और दो वर्ष पांच माह लगाते हुये मार्च 1867 वह संविधान विधि के रूप में पारित हुआ। आस्ट्रेलिया का संविधान सम्बन्धी सम्मेलन मार्च 1891 में हुआ और नौ साल बाद 9 जुलाई 1900 में संविधान ने विधि का रूप धारण किया। दक्षिणी अफ्रीका का सम्मेलन अक्तूबर 1908 में हुआ और एक वर्ष के बाद 20 सितम्बर 1909 को संविधान ने विधि का रूप लिया। यह सच है कि अमरीका और दक्षिणी अफ्रीका के सम्मेलनों ने जितना समय लिया हमने उससे अधिक समय लिया है। पर कनाडा ने जितना समय लिया उससे अधिक समय हमने नहीं लिया है और आस्ट्रेलिया से तो बहुत ही कम समय लिया है। इस कार्य में व्यतीत किये गये समय के आधार पर तुलना करने में दो बातें याद रखनी चाहिये। एक यह कि अमरीका, कनाडा, दक्षिणी अफ्रीका और आस्ट्रेलिया के संविधान हमारे संविधान से बहुत छोटे हैं। जैसा कि मैं कह चुका हूं हमारे संविधान में 395 अनुच्छेद

हैं और अमरीका निवासियों ने सात अनुच्छेद रखे हैं जिनमें से प्रथम चार को धाराओं में बांटा गया है जिनकी कुल संख्या 21 है, कनाडा के संविधान में 147, आस्ट्रेलिया के संविधान में 128 और दक्षिणी अफ्रीका के संविधान में 159 धारायें हैं। दूसरी बात यह याद रखनी है कि अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया और दक्षिणी अफ्रीका के संविधानों के निर्माताओं को संशोधनों की समस्या का सामना नहीं करना पड़ा। उनको पेश किया हुआ मान लिया गया। इसके विपरीत इस संविधान सभा को 2473 संशोधन पर विचार करना पड़ा। इन तथ्यों पर ध्यान देते हुये देर लगाने का दोषारोपण मुझे निराधार प्रतीत होता है बल्कि इतने महान और जटिल कार्य को इतने अल्प समय में पूरा करने के लिये इस संविधान सभा को चाहिये कि वह अपने आपको बधाई दे।

मसौदा समिति द्वारा दिये गये कार्य की पूर्णतया निन्दा करना श्री नजीरुद्दीन अहमद ने अपना कर्त्तव्य समझ लिया है। उनकी सम्मति में मसौदा समिति द्वारा किया गया कार्य केवल प्रशंसा न करने के योग्य ही नहीं वरन् वह निश्चित रूप से जिस स्तर का होना चाहिये उस स्तर से निम्न श्रेणी का है। मसौदा समिति द्वारा किये गये कार्य के बारे में अपनी राय कायम करने का प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार है और अपनी राय कायम करने के लिये श्री नजीरुद्दीन अहमद का स्वागत है। श्री नजीरुद्दीन अहमद समझते हैं कि मसौदा समिति के किसी भी व्यक्ति की उपेक्षा उनमें बुद्धिबल अधिक है। मसौदा समिति उनके इस दावे पर आपत्ति करना नहीं चाहती है। इसके विपरीत यदि सभा उनको मसौदा समिति में नियुक्त किये जाने के योग्य समझती तो मसौदा समिति उन्हें अपने में पाकर उनका स्वागत करती। यदि संविधान के निर्माण करने में उन्हें कोई स्थान नहीं मिला तो निश्चय ही इसमें मसौदा समिति का कोई दोष नहीं है।

यह स्पष्ट है कि मसौदा समिति के प्रति अपनी घृणा प्रकट करने के लिये श्री नज़ीरुद्दीन अहमद ने उसका नया नाम गढ़ा है। वह विषयान्तर करने वाली समिति है। श्री नजीरुद्दीन अहमद अवश्य ही अपनी इस सूझ से प्रसन्न होंगे। पर वे यह नहीं जानते हैं कि कौशल सहित विषयान्तर करने और कौशल रहित विषयान्तर करने में अन्तर है। यदि मसौदा समिति ने विषयान्तर किया तो वह परिस्थितियों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किये बिना नहीं किया। उसने अकस्मात् मछली पकड़ने के लिये बंसी नहीं फैंकी। वह जिस मछली के पीछे थे उसे प्राप्त करने के लिए उसने परिचित जलाशयों में खोज की। किसी अच्छी वस्तु की खोज में लगना विषयान्तर करने जैसी बात नहीं है। यद्यपि श्री नजीरुद्दीन अहमद का इस बात को मसौदा समिति की प्रशंसा के रूप में कहने का आशय न था पर मैं इसे मसौदा समिति की प्रशंसा के रूप में स्वीकार करता हूं। मसौदा समिति ने जिन संशोधनों को दोषयुक्त समझा उनको वापस करने की और उनके

[डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

स्थान में जो उसने अच्छे समझे उन्हें रखने की हिम्मत और सच्चाई यदि न दिखाई होती तो उस पर कर्त्तव्य पालन न करने तथा झूठी मान मर्यादा की भावना रखने का भारी दोष लगता। यदि कोई गलती हुई तो मुझे प्रसन्नता है कि मसौदा समिति ने उन गलतियों को मानने में आनाकानी नहीं की और उनको सुधारने में वह अग्रसर हुई।

मुझे यह जानकर खुशी हुई कि सिवा एक सदस्य के मसौदा समिति द्वारा किये गये कार्य के प्रति संविधान सभा के सदस्यों ने सामान्यतया प्रशंसात्मक भाव प्रकट किये हैं। मुझे विश्वास है कि मसौदा समिति इस यथार्थ अभिस्वीकरण को देखकर प्रसन्न होगी जो इतने उदार शब्दों में प्रकट किया गया है। इस सभा के सदस्यों द्वारा तथा मसौदा समिति के मेरे सहयोगियों द्वारा मुझ पर जो बधाइयों की वर्षा की गई है उसके कारण मैं प्रसन्नता से इतना ओत प्रोत हो गया हूं कि उनके प्रति पूर्णतया अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिये मुझे शब्द ही नहीं मिलते। संविधान सभा में अनुसूचित जातियों के स्वार्थों की रक्षा कराने के अतिरिक्त मैं अन्य किसी महानतर आकांक्षा को लेकर नहीं आया था। मुझे स्वप्न में भी यह विचार नहीं हुआ था कि मुझे और भी बड़े-बड़े प्रकार्यों को हाथ में लेने के लिये आमंत्रित किया जायेगा। इस कारण जब सभा ने मुझे मसौदा समिति में निमंत्रित किया तो मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। और जब मुझे मसौदा समिति का सभापति चुना गया तो मुझे और भी अधिक आश्चर्य हुआ। मसौदा समिति में मुझसे बड़े, मुझसे अच्छे और मुझसे अधिक सक्षम व्यक्ति विद्यमान थे जैसे कि मेरे मित्र श्री अल्लादि कृष्णास्वामी ऐयर। संविधान सभा और मसौदा समिति का मैं कृतज्ञ हूं कि उन्होंने मुझ में इतना विश्वास तथा भरोसा किया तथा मुझे अपना एक साधन बनाया और देश की सेवा करने का मुझे यह अवसर दिया (*हर्ष ध्वनि*)।

जो श्रेय मुझे दिया गया है उसका वास्तव में मैं अधिकारी नहीं हूं। उसके अधिकारी श्री बी.एन. राउ भी हैं जो इस संविधान के संविधानिक परामर्शदाता हैं और जिन्होंने मसौदा समिति के विचारार्थ संविधान का एक मोटे रूप में मसौदा बनाया। कुछ श्रेय मसौदा समिति के सदस्यों को मिलना चाहिये जिन्होंने जैसा कि मैं कह चुका हूं, 141 दिन तक बैठक की और उनके नये सूत्र खोजने के कौशल के बिना तथा विभिन्न दृष्टिकोणों के प्रति सहनशील तथा विचारपूर्ण सामर्थ्य के बिना इस संविधान बनाने का कार्य इतनी सफलतापूर्वक समाप्त न हो पाता। सबसे अधिक श्रेय इस संविधान के मुख्य मसौदा लेखक श्री एस.एन. मुकर्जी को है। बहुत ही जटिल प्रस्थापनाओं को सरल से सरल तथा स्पष्ट से स्पष्ट वैध भाषा में रखने की उनकी योग्यता की बराबरी कठिनाई से की जा सकती है और न कठिन परिश्रम करने की उनकी सामर्थ्य की तुलना की जा सकती है। इस सभा

के लिये वे एक देन स्वरूप थे। यदि उनकी सहायता न मिलती तो इस संविधान को अन्तिम स्वरूप देने में इस सभा को कई और वर्ष लगते। श्री मुकर्जी के अधीन कार्य करने वाले कर्मचारियों को भूल नहीं जाना चाहिये। क्योंकि मैं जानता हूं कि उन्होंने कितना कठिन परिश्रम किया है, और किस प्रकार उन्होंने कभी-कभी आधी रात के बाद तक भी काम किया है। उनके श्रम और सहयोग के लिये मैं उन सबको धन्यवाद देता हूं (*हर्ष ध्वनि*)।

मसौदा समिति का कार्य बहुत ही कठिन हो जाता यदि यह संविधान सभा विभिन्न विचार वाले व्यक्तियों का एक समुदाय मात्र होती, एक उखड़े हुए फर्श के समान होती जिसमें कहीं एक काला पत्थर होता तो कहीं सफेद और जिसमें प्रत्येक व्यक्ति या प्रत्येक समुदाय स्वयं अपने को विधिवेत्ता समझता। सिवा उपद्रव के और कुछ नहीं होता। सभा में कांग्रेस पक्ष की उपस्थिति ने इस उपद्रव की संभावना को पूर्णतया मिटा दिया और इसके कारण कार्यवाहियों में व्यवस्था और अनुशासन दोनों बने रहे। कांग्रेस पक्ष के अनुशासन के कारण ही मसौदा समिति यह निश्चित रूप में जानकर कि प्रत्येक अनुच्छेद और प्रत्येक संशोधन का क्या भाग्य होगा इस संविधान का संचालन कर सकीं। अतः इस सभा में संविधान के मसौदे के शान्त संचालन के लिये कांग्रेस पक्ष ही श्रेय की अधिकारी है।

यदि इस पक्ष के अनुशासन को सब लोग मान लेते तो संविधान सभा की कार्यवाही बड़ी नीरस हो जाती। यदि पक्ष के अनुशासन का कठोरता से पालन किया जाता तो यह सभा 'जी हजूरों' की सभा बन जाती। सौभाग्यवश कुछ द्रोही थे। श्री कामत, डॉ. पी.एस. देशमुख, श्री सिंधवा, प्रो. सक्सेना और पंडित ठाकुरदास भार्गव थे। इनके साथ-साथ मुझे प्रो. के.टी. शाह, और पंडित ह्रदयनाथ कुंजरू का भी उल्लेख करना चाहिए। जो प्रश्न उन्होंने उठाए वे बड़े सिद्धान्तपूर्ण थे उनके सुझावों को स्वीकार करने के लिए मैं तैयार नहीं था इस बात से उनके सुझावों का मूल्य कम नहीं होता और न उनकी इस सेवा में कोई कमी आती है जो उन्होंने इस सभा की कार्यवाहियों को रोचक बनाने में की है। मैं उनका कृतज्ञ हूं। यदि वे न होते तो मुझे वह अवसर नहीं मिलता जो मुझे इस संविधान में निहित सिद्धान्तों की व्याख्या करने के लिए मिला और जो इस संविधान के पारित करने के यंत्रवत कार्य की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण था।

अन्त में अध्यक्ष महोदय मुझे आपको धन्यवाद देना चाहिये कि आपने बड़ी कुशल रीति से इस सभा की कार्यवाहियों का संचालन किया। जिन लोगों ने इस सभा की कार्यवाहियों में भाग लिया है वे उस उदारता और सहृदयता को नहीं भूल सकते हैं जो आपने इस सभा के सदस्यों के साथ प्रदर्शित की। ऐसे अवसर आये जबकि केवल पारिभाषिक आधार पर मसौदा समिति के संशोधनों को रोकने का प्रयास किया गया। मेरे लिये वे बड़े चिन्तापूर्ण क्षण थे। मैं आपका इस बात के लिये बड़ा कृतज्ञ हूं कि आपने विधिवाद की संविधान निर्माण कार्य पर विजय नहीं होने दी।

[डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

इस संविधान की जितनी भी प्रति रक्षा की जा सकती थी उतनी प्रतिरक्षा मेरे मित्र श्री अल्लादि कृष्णास्वामी ऐयर और श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने की है। अत: इस संविधान के गुणों के सम्बन्ध में मैं कुछ नहीं कहूंगा। क्योंकि मैं समझता हूं कि संविधान चाहे जितना भी अच्छा हो यदि उसे कार्यान्वित करने वाले लोग बुरे हैं तो वह निस्संदेह बुरा हो जाता है। संविधान का क्रियाकरण पूर्णतया संविधान के प्रकार पर निर्भर नहीं करता है। संविधान केवल विधानमंडल, कार्यपालिका और न्यायपालिका जैसे अंगों के लिये व्यवस्था कर सकता है। राज्य के इन अंगों का क्रियाकरण जिन पर निर्भर करता है वह जनता और उसके द्वारा स्थापित किये गये राजनैतिक पक्ष है जो उसकी इच्छा और नीति पालन करने के साधन होते हैं। यह कौन कह सकता है कि भारत की जनता और उसके पक्ष किस प्रकार का व्यवहार करेंगे? क्या वे अपने प्रयोजनों को सिद्ध करने में संविधानिक साधनों को काम में लेंगे या वे क्रांतिकारी साधनों को अधिमान देंगे? यदि वे क्रांतिकारी साधन अपनाते हैं तो चाहे संविधान कितना ही अच्छा हो यह कहने के लिये किसी देवदूत की आवश्यकता नहीं है कि वह असफल होगा। अत: इस संविधान पर बिना इस निर्देश के कि जनता और पक्ष किस प्रकार की प्रवृत्ति दिखायेंगे कोई निर्णय देना व्यर्थ है।

इस संविधान की निन्दा अधिकतर दो क्षेत्रों से की जाती है साम्यवादी पक्ष द्वारा और समाजवादी पक्ष द्वारा वे क्यों इस संविधान की निन्दा करते हैं? क्या इस लिये कि यह संविधान वास्तव में खराब है? मैं यह कहने का साहस करता हूं कि 'नहीं हैं।' साम्यवादी पक्ष श्रमिकों की तानाशाही के सिद्धान्त पर आधृत संविधान चाहते हैं वे संविधान की इस कारण निन्दा करते हैं कि यह संसदीय लोकतंत्र पर आधृत है। समाजवादी दो बातें चाहते हैं। पहली बात जो वे चाहते हैं वह यह है कि यदि उनके हाथ में शक्ति आ जायेगी तो बिना प्रतिकर दिये सारी निजी सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण करने या समाजीकरण करने की स्वतन्त्रता संविधान द्वारा उन्हें मिलनी चाहिये। दूसरी बात समाजवादी यह चाहते हैं कि संविधान में वर्णित मूलाधिकार निरपेक्ष तथा बिना किसी परिसीमा के होने चाहिये जिससे कि यदि उनके पक्ष के हाथ में शक्ति आ जाये तो उन्हें आलोचना करने के लिये ही नहीं वरन् राज्य को उलटने तक के लिये भी पूरी पूरी आजादी मिल जाये।

ये ही मुख्य बातें हैं जिनके आधार पर इस संविधान की निन्दा की जाती है। मैं यह नहीं कहता हूं कि संसदीय लोकतन्त्र का सिद्धान्त ही राजनैतिक लोकतन्त्र का आदर्श स्वरूप है। मैं यह नहीं कहता हूं कि बिना प्रतिकर सम्पत्ति अर्जन न करने का सिद्धान्त इतना पवित्र है कि इसकी अवहेलना ही नहीं की जा सकती मैं यह नहीं कहता हूं कि मूलाधिकार कभी निरपेक्ष नहीं हो सकता है और उन पर जो परिसीमा लगाई गई है उनको कभी नहीं उठाया जा सकता है। हां, मैं यह अवश्य कहता हूं कि इस संविधान में जो सिद्धान्त निहित हैं वे इस वर्तमान पीढ़ी के विचार हैं और यदि आप इस कथन में कुछ अतिशयोक्ति समझें तो

मैं यह कहूंगा कि ये संविधान सभा के सदस्यों के विचार हैं। तो फिर इनको संविधान में निहित करने के लिये मसौदा समिति को दोष क्यों? और फिर मैं तो यह कहता हूं संविधान सभा के सदस्यों को भी दोष क्यों? महान अमरीका निवासी राजनीतिज्ञ जेफ़रसन ने, जिसने अमरीका के संविधान निर्माण कार्य में प्रमुख कार्य किया, कुछ बड़े गम्भीर विचार व्यक्त किये हैं जिनकी उपेक्षा संविधान बनाने वाले कभी नहीं कर सकते हैं। एक स्थल पर उन्होंने कहा है:—

"बहुमत की इच्छा से अपने आपको किसी बन्धन में डालने के लिये एक विशिष्ट राष्ट्र के रूप में हम प्रत्येक पीढ़ी को, मान सकते हैं पर वर्तमान पीढ़ी किसी भी अनुवर्त्ती पीढ़ी को, किसी अन्य देश के निवासियों से अधिक, बन्धन में नहीं बांध सकती है।"

एक और अन्य स्थल पर उन्होंने कहा है:

"राष्ट्र के उपयोग के लिये स्थापित संस्थाओं को उनके उद्देश्यों के अनुरूप बनाने तक के लिये भी न छुआ जा सकता है और न उनमें रूप भेद किया जा सकता है क्योंकि जनता के लिये न्यास के रूप में उनके प्रबन्ध करने के लिये जो व्यक्ति नियुक्त किये जाते हैं उनमें अधिकार निष्कारण मान लिये जाते हैं; यह विचार सम्भव है कि एक शासक के दुरुपयोग से बचने के लिये कल्याणकारी हों, पर स्वयं राष्ट्र के लिये ये बड़े मूर्खतापूर्ण हैं। फिर भी हमारे वकील और पुजारी इसी सिद्धान्त का प्रचार करते हैं, और मान लीजिये कि पूर्ववर्त्ती पीढ़ी का आधार हमसे अधिक सुदृढ़ था, उसे हम पर विधियों के आरोपण करने का अधिकार था जो हमारे लिये अपरिवर्त्तनीय है और उसी प्रकार से हम भावी पीढ़ियों के लिये विधि बना सकें और उनपर भार डाल सकें जिनमें परिवर्तन करने का उन्हें अधिकार न हो तो ठीक है यह संसार मृतकों का है और जीवन जीवन नहीं है।"

मैं निवेदन करता हूं कि जेफरसन ने जो कुछ कहा है वह केवल सत्य ही नहीं वरन् परम सत्य है। इस पर कोई आपत्ति हो ही नहीं सकती। जेफरसन द्वारा निर्धारित इस सिद्धान्त का यदि संविधान सभा पालन न करती तो वह अवश्य ही दोष ही का नहीं वरन् निन्दा तक का पात्र होती। पर मैं पूछता हूं कि क्या वह दोष का पात्र है? बिलकुल नहीं। इसके लिये केवल संविधान के संशोधन सम्बन्धी उपबन्धों का ही परिक्षण करना है। जनता को संविधान में संशोधन करने का अधिकार न देकर, जैसा कि कनाडा में है, या संविधान के संशोधन को असाधारण निबन्धों और शर्त्तों की पूर्त्ति के अधीन रखकर, जैसाकि अमरीका और आस्ट्रेलिया में है, सभा ने इस संविधान पर अपनी अन्तिम अच्युतता की मुहर लगाने का काम करने से अपने आपको रोका ही नहीं वरन् इस संविधान के संशोधन करने की एक बड़ी ही सुविधाजनक प्रक्रिया उपबन्धित की है। इस संविधान के किसी भी आलोचक को मैं यह चुनौती देता हूं कि वह यह सिद्ध करे कि संसार में कहीं भी किसी संविधान सभा ने, उन परिस्थितियों में जिनमें यह देश फंसा हुआ है,

[डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

संविधान के संशोधन के लिये इतनी सुविधाजनक प्रक्रिया उपबन्धित की हो। जो लोग इस संविधान से असन्तुष्ट हैं उन्हें केवल दो तिहाई बहुमत प्राप्त करना है और यदि वे वयस्क मताधिकार द्वारा निर्वाचित संसद् में दो-तिहाई बहुमत भी प्राप्त नहीं कर सकते हैं तो यह नहीं समझा जा सकता है। कि जन साधारण उनके असंतोष में उनका साथ दे रहा है।

संविधानिक अर्थ की केवल एक ही बात है जिसका मैं निर्देश करना चाहता हूं। इस बात की बड़ी शिकायत की गई है कि केन्द्रीयकरण बहुत अधिक है और राज्यों की स्थिति नगरपालिकाओं जैसी कर दी गई है। यह स्पष्ट है कि यह विचार केवल अतिशयोक्ति ही नहीं है बल्कि यह इस बात के प्रति मिथ्याधारणा पर भी आधृत हैं कि संविधान यथार्थ रूप में किन किन बातों के लिये प्रयास करता है। केन्द्र और राज्यों में परस्पर सम्बन्ध के विषय में उस मूलाधिकार का ध्यान में रखना आवश्यक है जिसपर यह सम्बन्ध निर्भर करता है। फेडरल शासन पद्धति का यह मूलभूत सिद्धान्त है कि विधायी और कार्यपालिका प्राधिकार का विभाजन केन्द्र और राज्यों में केन्द्र द्वारा निर्मित किसी विधि द्वारा नहीं होता वरन् स्वयं संविधान द्वारा किया जाता है। यही यह संविधान करता है। हमारे संविधान के अधीन राज्य अपने विधायी और कार्यपालिका अधिकार के लिये किसी प्रकार से भी केन्द्र पर आश्रित नहीं हैं। इस विषय में केन्द्र और राज्यों की स्थिति समान है। यह अनुभव करना कठिन है कि ऐसे संविधान को केन्द्रवादी किस प्रकार कहा जा सकता है। यह हो सकता है कि विधायी तथा कार्यपालिका प्राधिकार के प्रवर्तन के लिये केन्द्र को जितना क्षेत्र किसी अन्य फेडरल संविधान में दिया गया है उससे अधिक क्षेत्र का संविधान में दिया गया हो। यह हो सकता है कि अवाशिष्ट शक्तियां केन्द्र को दे दी गई हों और राज्यों को न दी गई हों। पर फेडरल शासन पद्धति की मुख्य बातें ये नहीं हैं। जैसा कि मैं कह चुका हूं फेडरल शासन पद्धति की मुख्य बात यह है कि संविधान द्वारा केन्द्र और एककों में विधायी तथा कार्यपालिका प्राधिकार का विभाजन हो। यह सिद्धान्त हमारे संविधान में निहित है। इसमें कोई भ्रम हो ही नहीं सकता। अतः यह कहना गलत है कि राज्य केन्द्र के अधीन रख दिये गये हैं। केन्द्र अपनी स्वेच्छा से उस विभाजन में कोई परिवर्तन नहीं कर सकता है। न न्यायपालिका कर सकती है। यह ठीक ही कहा गया है:

> "न्यायालय रूप भेद कर सकते हैं पर वे एक के स्थान में दूसरी बात नहीं रह सकते हैं। नये तर्कों के रूप में वे पहले निर्वचनों का पुनरीक्षण कर सकते हैं, नये दृष्टिकोण उपस्थित किये जाते हैं, सीमा तक दशाओं में वे विभाजन-पंक्ति को इधर-उधर कर सकते हैं, पर कुछ ऐसे अवरोध हैं जिनको वे पार नहीं कर सकते, निश्चित रूप से सौंपी हुई शक्तियों का वे पुनर्वटन नहीं कर सकते। वर्तमान शक्तियों की वे एक व्यापक रूप योजना दे सकते

हैं, पर किसी प्राधिकार को स्पष्ट रूप में दी गई शक्ति को वे किसी अन्य प्राधिकार को नहीं सौंप सकते हैं।"

अत: केन्द्रीयकरण के सम्बन्ध में लगाया गया प्रथम अभियोग जो फेडरेशन को निर्मूल करता है सिद्ध नहीं होगा।

दूसरा अभियोग यह है कि केन्द्र को राज्यों पर अतिक्रमण करने का अधिकार दिया गया है। इस अभियोग को स्वीकार कर लेना चाहिये। पर इन अतिक्रमणकारी शक्तियों के होने के कारण इस संविधान की निन्दा करने से पूर्व कुछ बातों पर ध्यान देना चाहिये। पहली बात यह है कि ये अतिक्रमणकारी शक्तियां इस संविधान का शान्तिकालीन रूप नहीं है। उनका प्रयोग और प्रवर्तन स्पष्ट रूप से केवल आपात के लिये ही सीमित है। दूसरी बात यह है: क्या हम आपात हो जाने पर केन्द्र को अतिक्रमणकारी शक्ति देने का वर्जन कर सकते थे? जो लोग आपात में भी केन्द्र को इन आक्रमणकारी शक्तियों के देने के औचित्य को स्वीकार नहीं करते हैं वे, ऐसा प्रतीत होता है कि, इस विषय के मूल में जो समस्या है उसका स्पष्ट ज्ञान नहीं रखते हैं। "दी राउन्ड टेबुल" प्रसिद्ध पत्रिका के दिसम्बर 1935 के अंक में एक लेखक ने इस समस्या को स्पष्ट रूप में दिया है और उसके निम्नलिखित उद्धरण को उद्धृत करने के लिये मुझे क्षमायाचना की आवश्यकता नहीं है। लेखक कहता है:

"राजनैतिक पद्धतियां, अन्तत: इस प्रश्न पर निर्भर करती हुई कि किस के प्रति या किस प्राधिकारी में नागरिक निष्ठा रखे, अधिकार और कर्तव्य की एक गुत्थी है। शान्तिकाल में यह प्रश्न उपस्थित नहीं होता क्योंकि विधि सरलतापूर्वक क्रियान्वित होती रहती है और व्यक्ति कुछ विषयों में एक प्राधिकारी की और कुछ में किसी अन्य प्राधिकारी की आज्ञा पालन करता हुआ अपना कार्य करता चला जाता है। पर संकटकाल में हो सकता है कि प्राधिकार विषयक दावों में संघर्ष हो जाये और उस समय यह स्पष्ट हो जाता है कि वस्तुत: निष्ठा का विभाजन नहीं हो सकता है। निष्ठा का यह वाद हेतु इस अन्तिम रूप में किसी न्याय-मण्डल के विधि-निर्वचन द्वारा निश्चित नहीं किया जा सकता है। विधि को तथ्य के अनूरूप होना चाहिये और यही विधि का दोष है। जब इन सब बातों को दूर कर दिया जाता है तो केवल यह प्रश्न रह जाता है कि कौन प्राधिकारी नागरिक की अवशिष्ठ निष्ठा का अधिकारी है। केन्द्र अधिकारी है या संघटक राज्य?"

इस समस्या का हल इसी प्रश्न के उत्तर पर निर्भर करता है जो इस समस्या पर सारभूत प्रश्न है। इसमें सन्देह नहीं हो सकता है कि जनता के एक विशाल भाग की सम्मति के अनुसार आपातकाल में नागरिक की अवशिष्ठ राज्य भक्ति केन्द्र के प्रति होनी चाहिये न कि संघटक राज्य के प्रति। क्योंकि केन्द्र ही सार्वजनिक लक्ष्य के लिये तथा समूचे देश के सामान्य हित के लिये प्रयत्नशील

[डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

हो सकता है। आपातकाल में प्रयोग करने के लिये केन्द्र को कुछ अतिक्रमणकरी शक्तियां देने के पक्ष में यह प्रमाण है। और फिर इन आपात शक्तियों द्वारा संघटक राज्यों पर क्या आभार डाले जाते हैं? इससे अधिक और कुछ नहीं कि आपात में अपने स्थानीय हितों के साथ साथ समूचे राष्ट्र की सम्मति और हितों का भी विचार किया जाये। केवल वे ही लोग इसके प्रति शिकायत कर सकते हैं जिन्होंने इस समस्या को समझा नहीं है।

यहां मैं अपना भाषण समाप्त कर देता। पर मेरा मस्तिष्क अपने देश के भविष्य विषयक विचारों से इतना परिपूर्ण है कि मैं यह अनुभव करता हूं कि इस अवसर पर इस विषय पर मैं अपने विचारों को व्यक्त करूं। 26 जनवरी 1950 को भारत एक स्वतन्त्र देश होगा (*हर्षध्वनि*) उसकी स्वाधीनता का क्या परिणाम होगा? क्या वह अपनी स्वाधीनता की रक्षा कर सकेगा या उसको फिर खो देगा? मेरे मन में सर्वप्रथम यह विचार आता है। यह बात नहीं कि भारत कभी स्वाधीन न रहा हो। बात यह है कि एक बार वह पाई हुई स्वाधीनता को खो चुका है। क्या वह दुबारा भी उसे खो देगा? यही वह विचार है जिसके विषय में भविष्य के प्रति मैं बहुत चिन्तित हूं। जो तथ्य मुझे बहुत परेशान करता है वह यह है कि भारत ने पहले एक बार अपनी स्वाधीनता खोई ही नहीं वरन् अपने ही कुछ लोगों की कृतघ्नता तथा फूट के कारण वह स्वाधीनता आई गई हुई। मुहम्मद बिन कासिम द्वारा सिन्ध पर आक्रमण करते समय दाहर राजा के सेनापति ने मुहम्मद बिन कासिम के अभिकर्त्ताओं से घूंस ले ली और अपने राजा की ओर से युद्ध करने से मना कर दिया। वह जयचन्द था जिसने मुहम्मद गोरी को भारत पर आक्रमण करने और पृथ्वीराज से युद्ध करने के लिये निमन्त्रण दिया और अपनी तथा सोलंकी राजाओं की सहायता का बचन दिया। जब शिवाजी हिन्दुओं की मुक्ति के लिये युद्ध कर रहा था उस समय अन्य मरहठा सरदार और राजपूत राजा मुगल बादशाओं की ओर से युद्ध कर रहे थे। जब अंग्रेज सिख शासकों को मिटाने में लगे हुए थे, सिखों का मुख्य सेनापति गुलाब सिंह चुपचाप बैठा रहा और सिख राजय को बचाने में सहायता न की। 1857 में जब भारत के एक विशाल भाग ने अंग्रेज़ों के विरुद्ध स्वाधीनता के संग्राम की घोषणा की तो मूक दर्शकों की भांति सिख खड़े खड़े तमाशा देखते रहे।

क्या इसी इतिहास की पुनरावृत्ति होगी? इस विचार से मैं चिन्तित हूं। इस तथ्य के कारण, कि जाति और मत मतान्तर के रूप में हमारे प्राचीन दुश्मनों के साथ साथ हम विरोधी राजनैतिक मत मतान्तर के आधार पर कई राजनैतिक पक्ष बनाते चले जा रहे हैं, यह चिन्ता और भी अधिक उग्ररूप धारण कर लेती है। क्या भारतीय मत मतान्तरों को देश से श्रेष्ठ मानेंगे या देश को मत मतान्तरों से श्रेष्ठ मानेंगे? मैं इस बात को नहीं मानता हूं। पर यह सत्य है कि यदि ये पक्ष मत

मतान्तरों को देश से श्रेष्ठ मानते हैं तो हमारी स्वाधीनता फिर संकट में पड़ जायेगी और संभवतः सदैव के लिए हाथ से जाती रहेगी। इस संकट से हम सबको दृढ़ होकर रक्षा करनी चाहिये। अपने खून की अन्तिम बूंदों से अपनी स्वाधीनता की रक्षा करने के लिए हमें दृढ़ प्रतिज्ञ होना चाहिये। (*हर्ष ध्वनि*)।

26 जनवरी 1950 को भारत एक लोकतंत्रात्मक देश होगा। इसका यह अर्थ है कि उस दिन से भारत में जनता के लिये जनता द्वारा जनता की सरकार होगी। वही विचार फिर मेरे मष्तिष्क में आता है। उसके इस लोकतन्त्रात्मक संविधान का क्या होगा? क्या वह इसकी रक्षा कर सकेगा या इसको फिर खो देगा। यह दूसरा विचार है जो मेरे मन में उत्पन्न होता है और मुझे पहले विचार की भाँति व्यथित करता है।

यह बात नहीं कि भारत लोकतन्त्र को जानता ही न था। एक समय था जब भारत गणराज्यों से सुसज्जित था और जहां राजा थे वहां भी या तो वे निर्वाचित होते थे या उनके अधिकार सीमित रहते थे। उनको परमाधिकार प्राप्त न थे। यह बात नहीं है कि भारत संसद या संसदीय प्रक्रिया से परिचित न था। बौद्ध भिक्षु-संघ के अध्ययन से विदित होता है कि केवल संसद ही नहीं थी—संघ संसद के अतिरिक्त और कुछ नहीं होते थे—वरन् आधुनिक युग में संसदीय प्रक्रिया के जितने भी नियम हैं उन सबसे ये संघ परिचित थे। उनके यहां बैठने के प्रबन्ध सम्बन्धी नियम, प्रस्तावों, संकल्पों, गणपूर्ति, उन्मोधक, मतगणना, शलाका द्वारा मतदान, अविश्वास-प्रस्ताव, व्यवस्था, पहले निर्णय हुए अभियोग इत्यादि सम्बन्धी नियम थे। यद्यपि बुद्ध इन नियमों को संघ की बैठकों में लागू करते थे, पर उन्होंने इन नियमों को देश की तत्कालीन राजनैतिक सभाओं में प्रचलित नियमों में से लिया होगा।

भारत से यह लोकतंत्रात्मक व्यवस्था मिट गई। क्या वह फिर इस व्यवस्था को मिटा देगा? मैं नहीं जानता। पर भारत जैसे देश में, जहां लोकतंत्र के एक दीर्घ काल से अप्रयुक्त रहने से यह एक नई सी वस्तु समझी जाती है, संभवतया लोकतन्त्र के स्थान में तानाशाही के होने का संकट वर्तमान है। यह बहुत कुछ संभव है कि यह नवजात लोकतंत्र अपना स्वरूप बनाये रखे पर वास्तव में अपने स्थान में तानाशाही की स्थापना कर दे। यदि कोई दुर्घटना होती है तो दूसरी संभावना के साकार होने की अधिक आशा है।

यदि हम लोकतंत्र को केवल रूप में ही नहीं वरन् यथार्थ में बनाये रखना चाहते हैं तो हमें क्या करना चाहिये? मेरे विचारानुसार सबसे पहले हमें यह करना चाहिये कि अपने सामाजिक और आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये हम संविधानिक रीतियों को दृढ़ता पूर्वक अपनायें। इसका अर्थ यह है कि क्रान्ति की निर्मम रीतियों का हम परित्याग करें इसका अर्थ यह है कि सविनय अवज्ञा, असहयोग और सत्याग्रह की रीति का हम परित्याग करें। आर्थिक तथा सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये जब कोई मार्ग न रहे तब तो इन असंविधानिक रीतियों का अपनाना

[डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

बहुत कुछ रूप में न्यायपूर्ण हो सकता है। पर जब संविधानिक रीतियों का मार्ग खुला हुआ है कि इन असंविधानिक रीतियों का अपनाना कभी न्यायसंगत नहीं हो सकता है। ये रीतियां अराजकता के सूत्रपात के अतिरिक्त और कुछ नहीं है और जितना शीघ्र इनका परित्याग किया जाये उतना ही हमारे लिये अच्छा है।

दूसरी बात जो हमें करनी है वह यह है कि हम उस सावधानी को बरतें को जोन स्टूआर्ट मिल ने उन सबको बरतने के लिये कहा है जो लोकतन्त्र को बनाये रखने में रुचि रखते हैं, वह यह है कि "किसी भी महान व्यक्ति के चरणों में अपने स्वातन्त्र्य को चढ़ा न दें या उसे वे शक्तियां न सौंपे जो उसे उन्हीं की संस्थाओं को मिटाने की शक्ति दे।" महान व्यक्तियों के प्रति, जिन्होंने जीवन पर्यन्त देश की सेवा की हो, कृतज्ञ होने में कोई बुराई नहीं है। पर कृतज्ञता की भी सीमा है। आयरलैंड के देशभक्त डोनियल ओं कोनैल ने उस विषय में यह ठीक ही कहा है अपने सम्मान को खोकर कोई पुरुष कृतज्ञ नहीं हो सकता, अपने सतित्व को खोकर कोई स्त्री कृतज्ञ नहीं हो सकती, और अपने स्वातन्त्र्य को खो कर कोई राष्ट्र कृतज्ञ नहीं हो सकता। किसी अन्य देश की अपेक्षा भारत के लिये यह चेतावनी अधिक आवश्यक है। क्योंकि भारत में भक्ति या जिसे भक्ति मार्ग या वीर पूजा कहा जाता है उसका भारत की राजनीति में इतना महत्वपूर्ण स्थान है जितना किसी अन्य देश की राजनीति में नहीं है। धर्म में भक्ति आत्म-मोक्ष का मार्ग हो सकता है। पर राजनीति में भक्ति या वीर पूजा पतन तथा अन्ततः तानाशाही का एक निश्चित मार्ग है।

तीसरा काम जो हमें करना है वह यह है कि केवल राजनैतिक लोकतन्त्र से ही हमें सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिये। अपने राजनैतिक लोकतन्त्र को हमें सामाजिक लोकतंत्र का रूप भी देना चाहिये। सामाजिक लोकतंत्र का क्या अर्थ है? इसका अर्थ जीवन के उस मार्ग से है जो स्वातंत्र्य, समता और बन्धुत्व को जीवन के सिद्धान्तों के रूप में अभिज्ञात करता है। स्वातन्त्र्य, समता और बन्धुत्व के इन सिद्धान्तों को इन तीनों के एक संयुक्त रूप से पृथक पृथक मदों के रूप में नहीं समझनी चाहिये। इन तीनों को मिलकर एक इस प्रकार का संयुक्त रूप बनता है कि एक का दूसरे से विच्छेद करना लोकतंत्र के मूल प्रयोजन को ही विफल करना है। स्वातन्त्र्य को समता से पृथक नहीं किया जा सकता, समता को स्वातन्त्र्य से पृथक नहीं किया जा सकता। और न स्वातन्त्र्य या समता को ही बन्धुत्व से पृथक किया जा सकता है। समता विहीन स्वातन्त्र्य से कुछ व्यक्तियों की अनेक व्यक्तियों पर प्रभुता का प्रादुर्भाव होगा। स्वातन्त्र्य विहीन समता व्यक्तिगत उपक्रम का ह्रास करेगा। बन्धुत्व के बिना स्वातन्त्र्य और समता अपना स्वाभाविक मार्ग ग्रहण नहीं कर सकते। उनको प्रवत्त करने के लिये सिपाही की आवश्यकता है। यह तथ्य स्वीकार करते हुये हमें कार्यारम्भ करना चाहिये कि भारतीय समाज में दो बातों का पूर्णतया अभाव है। इनमें से एक समता है। सामाजिक स्तर पर हमारे

भारत में हमारा एक ऐसा समाज है जो क्रमानुसार निश्चित असमता के सिद्धान्त पर आश्रित है जिसका अर्थ कुछ व्यक्तियों की उन्नति और कुछ का पतन है। आर्थिक स्तर पर हमारा एक ऐसा समाज है जिसमें कुछ लोग ऐसे हैं जिनके पास अतुल सम्पत्ति है और कुछ ऐसे हैं जो निरी निर्धनता में जीवन बिता रहे हैं। 26 जनवरी 1950 को हम विरोधी भावनाओं से परिपूर्ण जीवन में प्रवेश कर रहे हैं। राजनैतिक जीवन में हम समता का व्यवहार करेंगे और सामाजिक तथा आर्थिक जीवन में असमता का। राजनीति में हम एक व्यक्ति के लिये एक मत और एक मत का एक ही मूल्य के सिद्धान्त को मानेंगे। अपने सामाजिक और आर्थिक जीवन में अपनी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के कारण एक व्यक्ति का एक ही मूल्य के सिद्धान्त का हम खंडन करते रहेंगे। इन विरोधी भावनाओं से परिपूर्ण जीवन को हम कब तक बिताते चले जायेंगे? यदि हम इसका बहुत काल तक खंडन करते रहेंगे तो हम अपनी राजनैतिक लोकतन्त्र को सकट में डाल देंगे। हमें इस विरोध को यथासंभव शीघ्र ही मिटा देना चाहिये अन्यथा जो असमता से पीड़ित हैं वे लोग इस राजनैतिक लोकतन्त्र की उस रचना का विध्वंस कर देंगे जिसका निर्माण इस सभा ने इतने परिश्रम के साथ किया है।

एक दूसरी वस्तु जिसका हमारे यहां अभाव है वह बन्धुत्व के सिद्धान्त का अभिस्वीकरण है। बन्धुत्व से क्या अभिप्राय है? बन्धुत्व से अभिप्राय समस्त भारतवासियों के भाईचारे की भावना से है—यदि भारतवासी सब एक हैं तो। यह वह सिद्धान्त है जो सामाजिक जीवन को एकता तथा दृढ़ता प्रदान करता है। इसका प्राप्त करना कठिन है। यह कितना कठिन है इसका अनुमान जेम्स ब्राइस की उस कहानी से लगाया जा सकता है जिसका जिक्र उन्होंने संयुक्त राज्य अमेरिका के बारे में अमरीका कामनवेल्थ विषय पर अपनी एक कृति में किया है वह कहानी यह है—मैं स्वयं ब्राइस के शब्दों में इसे कहना चाहता हूं:—

> "कुछ वर्ष पूर्व अमरीका का प्रोटेस्टेन्ट एपिस्कोपल गिरजाघर अपने द्विवार्षिक सम्मेलन में अपनी पूजा की पद्धति के पुनरीक्षण में संलग्न था। यह वांछनीय समझा गया कि छोटे-छोटे वाक्यों की प्रार्थनाओं में एक प्रार्थना समस्त जनता के लिये भी पुर:स्थापित की जाये और एक प्रसिद्ध नये इंग्लैंड के पुजारी ने ये शब्द प्रस्थापित किये 'हे ईश्वर' हमारे राष्ट्र को आशीर्वाद दे। दोपहर बाद तत्क्षण स्वीकार करने के पश्चात इस वाक्य को दूसरे दिन पुनर्विचार के लिये प्रस्तुत किया गया और उस समय जन साधारण ने इस शब्द 'राष्ट्र' पर राष्ट्रीय एकता के बहुत ही अधिक निश्चित अभिस्वीकरण के रूप में अर्थ लगाते हुये इतनी आपत्तियाँ उठाई कि उस शब्द को छोड़ना पड़ा और ये शब्द रखने पड़े 'ऐ ईश्वर इन संयुक्त राज्यों को आशीर्वाद दीजिये।"

संयुक्त राज्य अमरीका में उस समय जब यह घटना हुई थी। इतना कम ऐक्यभाव था कि अमरीका के लोग यह नहीं समझते थे कि उनका एक राष्ट्र है। यदि

[डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

संयुक्त राज्य अमरीका के लोग यह नहीं सोच सकते थे कि उनका एक राष्ट्र है तो भारतवासियों के लिये यह सोचना कितना कठिन है कि उनका एक राष्ट्र है। मुझे वे दिन याद हैं जब कि राजनीति में दखल रखने वाले भारतवासी "भारत की जनता" शब्दों पर आक्रोश प्रकट करते थे। वे "भारतीय राष्ट्र" शब्दों को अधिक चाहते थे। मेरी यह सम्मति है कि इस बात में विश्वास करके कि हमारा एक राष्ट्र है हम एक बड़े मायाजाल में अपने आपको डाल रहे हैं। हजारों जातियों में बंटी हुई जनता किस प्रकार एक राष्ट्र हो सकती है? जितना शीघ्र हम यह अनुभव कर लें कि अभी हम राष्ट्र शब्द के सामाजिक और मनोवैज्ञानिक अर्थ में राष्ट्र नहीं है उतना ही हमारे लिये लाभदायक होगा। क्योंकि यह अनुभव कर लेने पर ही हम एक राष्ट्र बनाने की आवश्यकता का अनुभव करेंगे और इस लक्ष्य को प्राप्त करने के मार्ग और साधनों के बारे में गंभीर विचार करेंगे। इस लक्ष्य की प्राप्ति बहुत कठिन है—संयुक्त राज्य अमरीका में जितना कठिन थी उससे कहीं अधिक कठिन है। संयुक्त राज्य अमरीका में जाति-समस्या न थी। भारत में जातियां हैं। ये जातियां राष्ट्रीयता की विरोधिनी है। सर्व प्रथम इस कारण कि ये सामाजिक जीवन में पार्थक्य प्रस्तुत करती हैं। ये इस कारण भी राष्ट्रीयता की विरोधिनी हैं कि परस्पर जातियों में ईर्ष्या और द्वेष उत्पन्न करती हैं। परन्तु यदि हम वास्तव में एक राष्ट्र के रूप में होना चाहते हैं तो हमें इन सब कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करना है। क्यों बन्धुत्व तभी सत्य हो सकता है जब कि एक राष्ट्र हो। बन्धुत्व के बिना समता और स्वातन्त्र्य की जड़ उतनी ही गहरी हो सकेगी जितनी रंग की सतह की जड़ होती है।

जो कार्य हमारे सामने हैं उसके बारे में मेरे ये विचार हैं। कुछ लोगों को अच्छे न लगें। पर इस बात का विरोध नहीं किया जा सकता। कि इस देश में राजनैतिक शक्ति एक दीर्घ काल से चन्द लोगों के अधिकार में ही रही है और अधिकांश लोग केवल भारवाही पशु ही नहीं वरन् बलि-पशु तक रहे हैं और हैं। इस एकाधिकार ने उन्हें केवल अपनी दशा सुधारने के अवसर से ही वंचित नहीं रखा वरन् इसने उनमें से उस तत्व तक को निचोड़ लिया जिसको जीवन का महत्व कहा जा सकता है। ये पद्दलित वर्ग शासित होने से परेशान हैं। वे स्वयं अपने पर शासन करने के लिये बेचैन हैं। पद्दलित वर्गों में इस स्वानुभूति की प्रेरणा को वर्ग-संघर्ष या वर्ग-युद्ध का रूप ग्रहण नहीं करने देना चाहिये। इससे सभा में विभाजन हो जायेगा। वह दिवस वास्तव में प्रलय दिवस होगा। क्योंकि जैसा अब्राहम लिन्कन ने ठीक ही कहा है कि जिस सभा में ही स्वयं मतभेद हो वह अधिक काल तक नहीं टिक सकती। अत: उनकी आकांक्षाओं की जितनी शीघ्र पूर्ति की जायेगी उतनी ही अधिक चन्द व्यक्तियों की, देश की, उसकी स्वाधीनता को बनाये रखने में तथा उसकी लोकतंत्रात्मक रूप रेखा को बनाये रखने

में भलाई है। यह तभी हो सकता है जब कि समता और बन्धुत्व की स्थापना जीवन के सब अंगों में हो। इसी कारण मैंने इन पर इतना जोर दिया है।

सभी को मैं और अधिक कष्ट देना नहीं चाहता हूं। इसमें सन्देह नहीं कि स्वाधीनता हर्ष का विषय है। पर हम यह न भूल जायें कि स्वाधीनता ने हमारे ऊपर महान उत्तरदायित्व डाल दिये हैं। स्वाधीनता के कारण अब हमारे पास किसी त्रुटि के लिये अंग्रेजों पर दोष डालने का बहाना नहीं रहा। यदि एतत्पश्चात् कोई त्रुटि होती है तो सिवा अपने स्वयं के हम किसी अन्य को दोष नहीं दे सकते हैं। त्रुटियां होने का बड़ा भारी भय है। काल बड़ी तीव्र गति से बदलता चला जा रहा है। जनता जिसमें हमारे देश की जनता भी शामिल है नई विचार धाराओं से प्रभावित हो रही है। जनता द्वारा शासन से वह परेशान होती चली जा रही है। वह जनता के लिये सरकार बनाने के लिये तैयार है और इस बात के प्रति उदासीन है चाहे वह जनता को जनता द्वारा सरकार हो या न हो। यदि हम इस संविधान का रक्षण करना चाहते हैं जिसमें हमने जनता के लिये जनता द्वारा जनता की सरकार के सिद्धान्त की प्रतिष्ठा करने का प्रयास किया है तो हम इस बात का संकल्प करें कि जो बुराइयां हमारे मार्ग में हैं और जिनके कारण जनता के लिये सरकार को जनता द्वारा सरकार से अधिक पसन्द करती है उन बुराइयों को समझने में बिलम्ब न करें और उन बुराइयों को दूर करने के उपक्रम में दौर्बल्य न दिखायें। देश की सेवा करने का यही मार्ग है। इससे अच्छे मार्ग से मैं परिचित नहीं हूं।

***अध्यक्ष:** सभा कल प्रात: दस बजे तक के लिये स्थगित होगी और उस समय हम डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये प्रस्ताव पर मत लेंगे।

*इसके पश्चात् सभा शनिवार 26 नवम्बर 1949 ई. के प्रात: दस बजे तक के लिये स्थगित हुई।*

———————

GIPD–HS-247A PSD–9-1-53–320.